सं० २४९२ तंत्री जगजीवन बाउचंद दोशी वर्ष २२ अंक नं० १

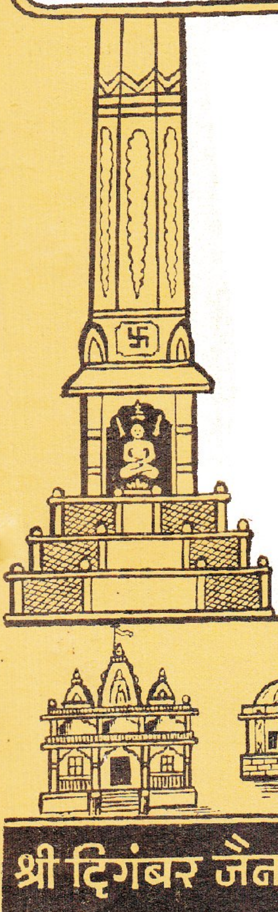

है धन्य धन्य वे निर्मोही!

दुनिया में रहें चाहे दूर रहें जो खुद में समाये रहते हैं,
सब काम जगत के किया करें, नहीं प्यार किसी से करते हैं ॥१ ॥
वह चक्रवर्ती पद भोग करें पर भोग में लीन नहीं होते,
वह जल में कमल की भाँति सदा घरवास बसाये रहते हैं ॥२ ॥
कभी नर्कवेदना सहते पर मगन रहें निज आतम में,
स्वर्ग संपदा पा करके भी रुचि हटाये रहते हैं... ॥३ ॥
नहीं कर्म के कर्ता बनते हैं स्वामित्व न पर में धरते हैं,...
नहीं दुःख में दुःखी सुख में सुखी समभाव धराये रहते हैं ॥४ ॥
वह सप्त भय से रहित सदा, वे सरधासें न कभी डिगते,
जिनवरनंदन केलि सदा वह निज आनंद में करते हैं.. ॥५ ॥
हैं धन्य धन्य वे निर्मोही, जिन शांत दशा है प्रगटाई,
'शिवराम' चरण में उनके सदा, हम शीश झुकाये रहते हैं ॥६ ॥

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मई १९६६] वार्षिक मूल्य २) (२५३) एक अंक २५ पैसा [बैसाख सं० २०२३

पूज्य कानजी स्वामी जन्म जयंती महोत्सव

जयपुर : आदरणीय सत्पुरुष श्री का ७७ वाँ जन्म जयंती महोत्सव देश भर में बहुत जगह मनाया गया। उनमें विशेष रूप से जयपुर-काला छाबड़ान के मंदिर में बैसाख सुदी दोज श्री सेठ पूरणचन्दजी गोदिका की अध्यक्षता में समारोह पूर्वक मनाया गया।

डा० ताराचंद्रजी जैन बक्षी ने स्वामीजी के जीवन, कार्य तथा सोनगढ़ के परिचय पर प्रकाश डाला, बाद बड़े पंडित जी चैनसुखदासजी, पंडित फूलचंदजी सि० शास्त्री, पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य, प्रो० राजारामजी जैन, डा० कस्तूरचंदजी कासलीवाल, पंडित भँवरलालजी, पंडित बंशीधरजी कलकत्ता, श्री ब्रह्मचारी जिनेन्द्रजी पानीपत, प्रमुख व्यक्ति श्री मिश्रीलालजी गंगवाल मंत्री मध्यप्रदेश, श्री सेठ राजकुमारसिंहजी इंदौर, श्री फूलचंदजी जैन एमएलए जयपुर, श्री ढ़ेबरभाई, श्री यशपालजी जैन, श्री नेमीचंदजी पाटनी अध्यक्ष दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल जयपुर की श्रद्धांजलि-सम्मतियां तथा शुभ कामनायें पढ़कर सुनाई, आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी के द्विशताब्दी समारोह और स्मारक भवन स्मृति ग्रंथ प्रकाशन के संबंध में पूरी योजना पर प्रकाश डाला।

श्री विद्याधरजी काला ने विभिन्न मंदिरों में स्वाध्याय सभायें, धार्मिक शिक्षण शिविर, धार्मिक ज्ञान के प्रसार व पूरी योजना की जानकारी प्रगट की।

स्वामीजी के प्रवचन की टेपरील रेकार्ड सेठ ताराचंदजी गंगवाल ने सुनाया। एक घंटा तक श्रोताओं ने बड़ी शांति और सावधानी से सुना, आनंद विभोर हो गये। अंत में अग्रणीजनों ने स्वामीजी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित की, शुभकामनायें प्रगट की। *—डा० ताराचंद जैन*

'वीरवाणी' के संपादक महोदय ने श्री कानजीस्वामी की ७७वीं जयन्ती के अवसर पर प्रमुख अग्रणी महानुभावों द्वारा आई हुई श्रद्धांजलियाँ तथा स्वामीजी का परिचयात्मक विशेषांक प्रगट किया। धन्यवाद।

आत्मधर्म के ग्राहकों से प्रार्थना

१. आत्मधर्म का वर्ष वैशाख मास से शुरु होता है, अत: तारीख २३-५-६६ तक वैशाख मास का अंक न मिले तो कार्यालय को सूचित करें।

२. हर मास की १८ तारीख तक आपको अंक न मिले तो सूचित करें।

३. पत्र में आपको किस नंबर का अंक प्राप्त नहीं हुआ; अपना पता, ग्राहक नंबर स्पष्ट शब्दों में लिखें।

४. फर्याद, चन्दा, पता बदलना और जानकारी के लिये पत्र व्यवहार व्यवस्थापक आत्मधर्म कार्यालय C/o दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला)

जून : १९६५ ☆ वर्ष २२वाँ, बैसाख वीर नि०सं० २४९२ ☆ अंक : १

सम्यग्ज्ञान की महिमा

धन समाज गज बाज राज तो काज न आवे,
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावे;
तास ज्ञान को कारन स्व-पर विवेक बखानो;
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उन आनो।
जे पूरब शिव गये जाहिं अब आगे जैहें,
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहै हैं।

सम्यग्ज्ञान की महिमा बतलाकर उसे धारण करने की प्रेरणा देते हुए पंडित श्री दौलतरामजी छहढाला में कहते हैं कि—धन, समाज, हाथी-घोड़े, राज्य वैभव तो जीव के कुछ काम नहीं आता, परंतु सम्यग्ज्ञान प्रगट होने पर वह अचलरूप से जीव के साथ रहता है। स्व-पर का भेदज्ञान उस सम्यग्ज्ञान का कारण है, इसलिये हे भव्यों! करोड़ों उपायों द्वारा भी उस सम्यग्ज्ञान को अंतर में प्रगट करो। जो पूर्वकाल में मोक्ष गये हैं, वर्तमान में जा रहे हैं और भविष्य में जायेंगे—वह सब सम्यग्ज्ञान की ही महिमा है—ऐसा मुनिवरों ने कहा है।

श्री सीमंधर भगवान

उन्हीं के संबंध में कुछ ज्ञातव्य कथन

श्री सीमंधर भगवान इस जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व दिशा में प्रथम विजय क्षेत्र जो पुष्कलावती नामक बड़ा देश है, वहाँ सदा चतुर्थ काल जैसी स्थिति और क्रमशः सीमंधर नाम के धारक तीर्थंकर सदा जन्मते रहते हैं। इस नाम के धारक अनंत जीव तीर्थंकर होकर मोक्ष पधारे।

वर्तमान विदेह क्षेत्रस्थ श्री १००८ श्री सीमंधर भगवान तीर्थंकर पद में अर्हंत परमेष्ठी पद में विराजमान हैं, उन्हीं के परमभक्त श्री कानजी स्वामी के शुभहस्त द्वारा करीब २५० जिन प्रतिमाओं की अंकन्यास विधि और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई है, उनमें से ४० प्रतिमायें तो श्री सीमंधर भगवान की हैं।

महाविदेहक्षेत्र इस भरतक्षेत्र के वर्तमान उत्तर ध्रुव से दूर-अति दूर पचास हजार महायोजन दूर है, जहाँ महामेरु पर्वत से पूर्व दिशा में पुष्कलावती विजयनामा विदेहक्षेत्र में सीमंधर भगवान विराजमान हैं।

मध्यलोक में असंख्य द्वीप-समुद्र हैं, उसके ठीक मध्य में थाली के आकार में जम्बूद्वीप है जो एक लाख महायोजन का है, उसके दक्षिण किनारे पर यह भरतक्षेत्र है और मध्य भाग में पूर्व दिशा में श्री सीमंधर भगवान तीर्थंकरपद सहित विहार करते हैं, इस जम्बूद्वीप में हम सब रहते हैं।

श्री सीमंधर भगवान का दूसरा नाम स्वयंप्रभ तथा अपराजितेश्वर है, उनके पिताजी का नाम श्री श्रेयांसराय, माताजी का नाम सत्यदेवी। उनका शरीर का वर्ण कंचन (सुवर्ण) समान है, शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष है (४ हाथ का एक धनुष) उनका चिह्न वृषभ है (जो जन्मकल्याणक के समय इन्द्र द्वारा स्थापित किया जाता है) जन्म सीतानदी के उत्तर भाग में पुष्कलावती महाविदेह की पुंडरीकिणी नगरी में हुआ था - आयुष्य एक कोटि पूर्व का है (एक पूर्व में ७० लाख कोटि और ५६ हजार कोटि वर्ष होता है) उनका समवसरण (धर्मसभा) बारह योजन में है। समवसरण में असंख्य देव, देवियाँ तथा पशु-मानव १२ प्रकार

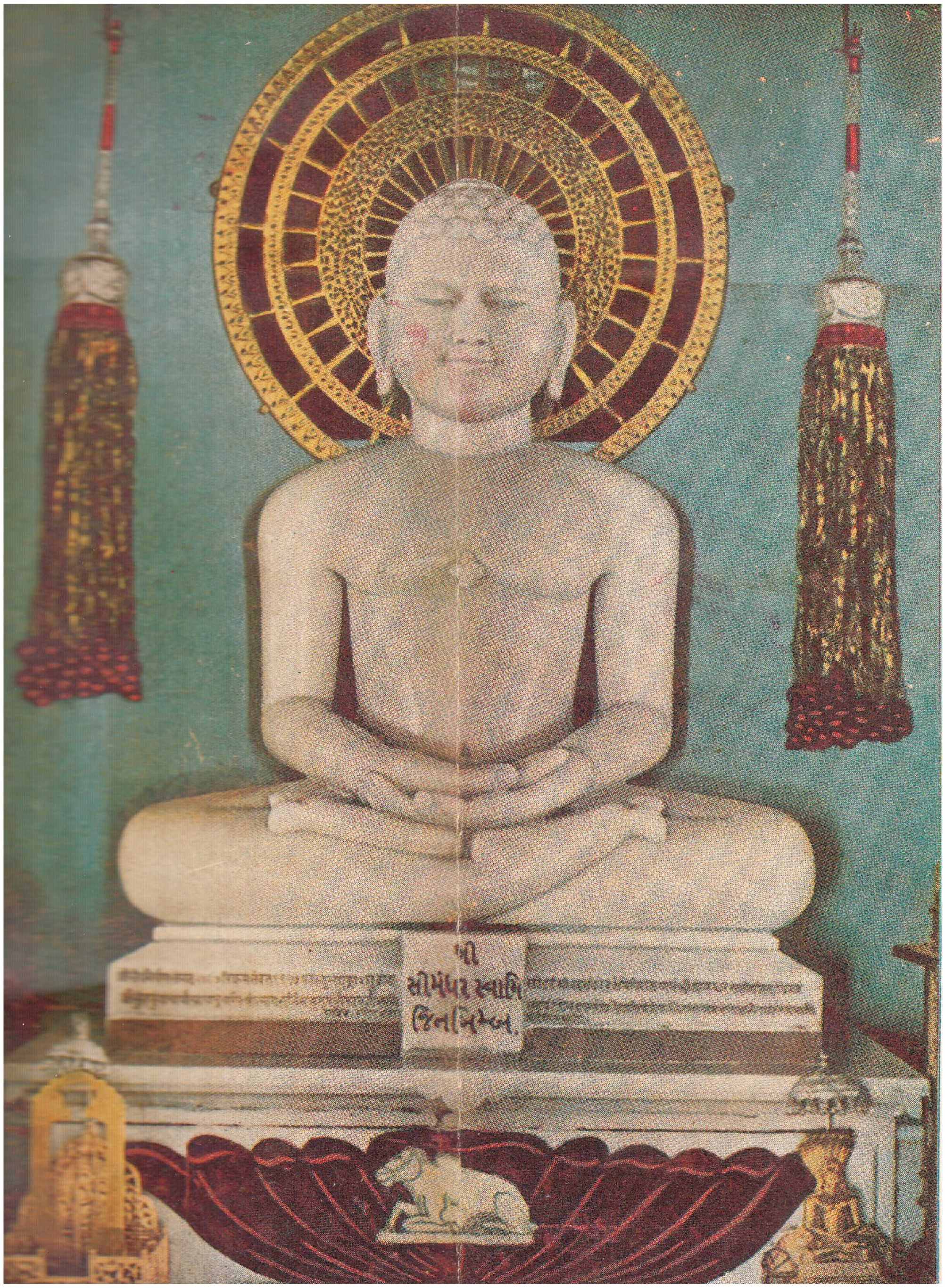

श्री सीमंधर भगवान, सोनगढ़

के विभाग सहित सभा में आकर अपने-अपने नियत स्थान में आ, विनयसहित उपदेश सुनते हैं, उनमें मनुष्यों की सभा के नायक श्री 'पद्मरथ' चक्रवर्ती महाराजा हैं।

जब श्रीकृष्णजी की महारानी रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्नकुमार खो गया था (कोई पूर्वभव का वैरी देव उठाकर ले गया था) तब श्रीकृष्ण ने नारदजी (नवमां नारद जिनको आकाशगामिनी विद्या सिद्ध थी) से पुत्र शोध करने की प्रार्थना की, तब नारदजी श्रीकृष्ण के पुत्र के समाचार जानने के लिये उस महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमंधर प्रभु के समीप सभा में गये थे, तब उस समय (जो पुंडरीकिणी नगरी के नायक पद्मरथ चक्रवर्ती राजा हैं उस) पद्मरथ चक्रवर्ती ने आश्चर्यसहित प्रश्न किया कि प्रभो!! यह क्या है?... कौन है? इस प्रकार का विस्तार से वर्णन श्री प्रद्युम्नचरित्र के छठवें सर्ग में है।

पद्मपुराण में भी इस चौबीसी के श्रीमुनिसुव्रतनाथ प्रभु के तीर्थकाल में जो (आठवाँ) नारदजी थे, उनका महाविदेह में सीमंधर प्रभु के समीप जाने का वर्णन है, उसमें कहा है कि जिनेन्द्र की कथा में जिनका मन आशक्त है, ऐसा दशरथ महाराज (श्री रामचंद्रजी के पिता) के दरबार में श्री नारदजी पधारते हैं, राजा दशरथ उनसे नया समाचार पूछते हैं, तब जिनेश्वर जिनेन्द्र चन्द्र का परम पावन चरित्र प्रत्यक्ष देखने से जिनको परम हर्ष उत्पन्न हुआ है, ऐसे नारदजी कहते हैं कि 'हे राजन्! मैं विदेहक्षेत्र में आकाशमार्ग से गया था, वह उत्तम जीवों से, महान वैभव से भरा क्षेत्र है और स्थान-स्थान पर श्री जिनराज के बड़े-बड़े मंदिर हैं, स्थान-स्थान पर परम सौम्य मुद्रा सहित यथाजात नग्न दिगम्बर जिन मुद्राधारी महामुनि विराजमान हैं। (वहाँ) श्री परम देवाधिदेव तीर्थंकर देव, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेव वगैरह शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं, वहाँ जाकर पुंडरीकिणी नगरी में श्री सीमंधर स्वामी का तप (दीक्षा) कल्याणक प्रत्यक्ष देखा; तथा जिसप्रकार यहाँ श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर प्रभु का सुमेरु पर्वत पर जन्माभिषेक आपने हमने सुना है, ठीक वैसा ही श्री सीमंधरस्वामी का जन्माभिषेक का महान उत्सव मैंने सुना... तथा उनके तप कल्याणक को तो मैंने प्रत्यक्ष ही देखा।' (देखो, पद्मपुराण सर्ग २३, पृष्ठ २५८)

प्रश्न—उन श्री सीमंधर तीर्थंकर भगवान का निर्वाण कल्याणक कब होगा?

उत्तर—आगामी चौबीसी में भरतक्षेत्र के १३-१४वें तीर्थंकर के बीच के काल में होगा।

विक्रम संवत् ४९ में दक्षिण भारत में कांजीवरम्, शिवकांची तथा पिदाथनाडू जिले के अंतर्गत कुरुमाराई नगर (कांजीवरम्) में श्री पद्मनंदी कुन्दकुन्दादि नाम के धारक प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य हो गये। मद्रास से ८० मील दूर वंदेवास और धवलगिरि के पास पौन्नूर हिल तीर्थक्षेत्र है, वहाँ से मुनिदशा में श्री कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु श्री सीमंधर भगवान के दर्शन तथा धर्म श्रवण के लिये समवसरण में गये, साक्षात् भगवान के दर्शन किये और आठ दिन तक वहाँ निराहार रहकर प्रभु की दिव्यध्वनि का श्रवण तथा वहाँ के श्रुतकेवली आदि मुनिवरों का दर्शन और परिचय किया, उस समय भी वहाँ सभा में एलायची जितना छोटा शरीर धारी मुनि को देखकर पद्मरथ चक्रवर्ती ने आश्चर्य व भक्तिसहित अपनी हथेली में लेकर सभा को दर्शन कराया, तब से एलाचार्य नाम पड़ा। [श्री कुन्दकुन्दाचार्य आकाशगामिनी ऋद्धि द्वारा विदेहक्षेत्र में भगवान के पास गये थे, उनके लिये प्राचीन दिगम्बर जैनाचार्यों ने भी उल्लेख किये हैं तथा दक्षिण भारत में २० प्रतिशत उपरांत स्थान पर शिलालेख पर प्राचीन उल्लेख है, आज भी वह सुप्रसिद्ध बात वहाँ पर (दक्षिण में) जाकर देखने से ज्ञात होती है। कुन्दकुन्दाचार्य के विदेहक्षेत्र के गमन के प्रमाणरूप ऐतिहासिक खोज, नामक लेख सन्मति सन्देश, वर्ष ७, अंक ५, पृष्ठ ४५ से ४७ में देखो।]

सोनगढ़ से प्रकाशति समवसरण स्तुति में उस प्रसंग का थोड़ा वर्णन निम्नप्रकार है:—

हरिगीत (१)

बहु ऋद्धिधारी कुन्दकुन्दमुनि हुए उस काल में,
जो श्रुतज्ञान प्रवीण अरु अध्यात्मरत थे योगी वे;
आचार्य का मन एक दिन जिन विरह ताप हुआ महा,
रे... रे... सीमंधर जिनका विरह हुआ इस भरत में।

(२)

एकाएका खिरी ध्वनि जिनजी की 'सद्धर्मवृद्धितपो'
सीमंधर जिनके समोसरण में ना अर्थ समझे जनो;
संधिहीन ध्वनि सुनी परिषदे आश्चर्य उपजा महा,
अल्पकाल... बीते तहां मुनि दिखे अध्यात्म मूर्तिसमा।

(३)

दो कर जोड़ खड़े प्रभु प्रणमतां, क्या भक्ति में लीनता,
सूक्ष्म देह अरु दिगम्बरदशा, विस्मित लोगों हुआ;
चक्री विस्मय भक्ति से जिनप्रति.. हे..नाथ यह कौन है?
'है आचार्य समर्थ वो भरत के सद्धर्म वृद्धि करा'

(४) (अनुष्टुप)

सुनी यह बात जिनवर की हर्ष जन ह्दये धरे,
नानकड़ा मुनि कुंजर को 'एलाचार्य' जनों कहे;

(५)

प्रत्यक्ष जिनवर दर्शने बहु हर्ष एलाचार्य को,
ओम्कार सुनते जिनजी का अमृत मिला मुनि ह्दय को;
सप्ताह एक मुनि ध्वनि, श्रुतकेवली परिचय करी,
शंका निवारण सर्वकर-मुनि भरत में आये फरी।

नोट—उस पावन दृश्य के दर्शनार्थ देखो—सोनगढ़ तथा राजकोट (सौराष्ट्र), चांदखेड़ी (राजस्थान), बाहुबली (कोल्हापुर) तथा बंबई में सीमंधर प्रभु का समवसरण जहाँ सीमंधरादि २० तीर्थंकर विचरते हैं, ऐसे विदेहक्षेत्र (१६० क्षेत्र) अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मरी आदि रोगों से रहित हैं, तथा १८ दोष (समस्त दोषों) से रहित जिनदेव के सिवा अन्य कोई कुदेव-कुलिंग या कुमत भी वहाँ नहीं होते। वे देश सदा केवलज्ञानी भगवंत और तीर्थंकर (पंचपरमेष्ठी), चक्रवती आदि शलाका पुरुषों से भरे हुए होते हैं। धन्य हो... हमारे वीतरागता के सुस्मरणार्थ उस धर्म प्रवर्तक, रत्नत्रयधर्मरूपी धुरा को धारण करनेवाले, धर्मसार्थी, धर्मचक्री भगवंतो को...।

विचार करो—

१. मैं ज्ञेय नहीं, ज्ञान हूँ।
२. मैं ज्ञेय हूँ और ज्ञाता हूँ।
३. निर्विकल्प

ढाई द्वीप

१. जम्बूद्वीप - मध्य लोक में, बिलकुल मध्य भाग में थाली आकार गोल, एक लाख महायोजन का है। उसमें ५२६ महायोजन का एक भरतक्षेत्र, एक ऐरावतक्षेत्र और उससे बत्तीस गुणा बत्तीस महाविदेहक्षेत्र, एक महामेरु पर्वत और छह भोगभूमियां हैं आदि वर्णन तत्त्वार्थसूत्र-मोक्षशास्त्र से जानना।

२. धातुकी खंडद्वीप-चार लाख महायोजन,

३. अर्ध पुष्कर द्वीप - आठ लाख महायोजन।

जम्बूद्वीप के चहुंओर चूड़ी आकार दो लाख योजन का लवण समुद्र है, धातुकी खंड द्वीप के चहुंओर आठ लाख योजन का कालोदधि समुद्र है, उसके चहुंओर चूड़ी आकार १६ लाख योजन का पुष्करवर द्वीप में ८ लाख योजन तक की सीमा में ४५ लाख महायोजन होता है (२००० कोस का एक महायोजन), यह ढाई महाद्वीप का सब क्षेत्र 'मनुष्यक्षेत्र-मनुष्य लोक' कहा जाता है क्योंकि सब प्रकार के मनुष्य इस ढ़ाई द्वीप में ही रह सकते हैं, इसके बाहर कोई भी मनुष्य कभी भी किसी विद्या विमानादि द्वारा अथवा देवादिक के द्वारा बाहर नहीं जा सकते। इसलिये तीसरा पुष्करवर द्वीप के मध्य में चूड़ी के आकार में दो विभाग करनेवाला मानुषोत्तर नाम का महा पर्वत है जो स्वयं मनुष्य क्षेत्र की अंतिम सीमा है।

(त्रिलोकसार, गाथा ३०४ से ३२३)

ढाई द्वीप की शाश्वत रचना का सामान्य वर्णन—

मेरुगिरी ५—(१) जम्बूद्वीप के बीच में एक लाख महायोजन ऊँचा सुदर्शनमेरु (२) धातुकी खंड द्वीप में दो मेरु ८४ हजार महायोजन ऊँचा एक पूर्व दिशा में विजयमेरु दूसरा पश्चिम दिशा में अचलमेरु (२) अर्द्ध-पुष्करवर द्वीप में दो-पूर्व दिशा में मंदरमाली मेरु और पश्चिम दिशा में विद्युतमाली मेरु=कुल ढ़ाई द्वीप में ५ मेरु।

महाविदेहक्षेत्र ३२—प्रत्येक मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में दो श्रेणी के १६ खंडों (-विजय) और पश्चिम दिशा में भी उसी प्रकार १६ खंडों का महाविदेहक्षेत्र है। उस ३२

खंडोंवाले पाँच महाविदेहक्षेत्र हैं। उन १६० खंडों में भरतक्षेत्र (५२६ महायोजन) के समान एक-एक खंड में पाँच-पाँच अनार्य (म्लेच्छ खंड) है। ऐसे उन १६० क्षेत्रों में कालादि की व्यवस्था भरतक्षेत्र के चतुर्थ काल के समान होती है। ३२×५=१६० आर्य खंड और १६०×५=८०० म्लेच्छखंड से विभाजित पाँच विदेहक्षेत्र ढ़ाई द्वीप में है।

१- जम्बूद्वीप में दक्षिण दिशा में एक भरतक्षेत्र है-उत्तर दिशा में ऐरावतक्षेत्र है। धातुकी खंड द्वीप में दो भरत और दो ऐरावतक्षेत्र है। उनका विस्तार भरतक्षेत्र से दूना-दूना है।

२- ढ़ाई द्वीप में (४५ लाख महायोजन की भू स्थल में ५-भरत, ५-ऐरावत, ५-विदेहक्षेत्र मिलकर ५+५+५=१५ कर्मभूमि हैं।)

कर्म भूमि—जहां-असि=शस्त्रों द्वारा रक्षा का कार्य करनेवाला।

मसि=लेखन कार्य, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प यह छह प्रकार से आजीविका होय, उसे कर्मभूमि कहते हैं और ३० भोगभूमि हैं, उनका उत्तम, मध्यम, जघन्य ऐसे तीन भेद हैं। वहाँ व्यापारादि षट्कर्म नहीं करने पड़ते हैं। किंतु १० प्रकार के कल्पवृक्षों के द्वारा निर्वाह होता है।

३- भरतक्षेत्र में—वर्तमान चौबीसी में दूसरे अजितनाथ स्वामी तीर्थंकर भगवान के समय में उत्कृष्ट धर्म काल और उत्कृष्ट संख्या में तीर्थंकर भगवान थे। पाँच विदेहक्षेत्र के ३२×५=१६० क्षेत्र के १६० तीर्थंकर और भरतक्षेत्र के पाँच और ऐरावतक्षेत्र के पाँच मिलकर १० इसप्रकार १६०+१०=१७० तीर्थंकर उस समय ढाई द्वीप में थे।

वर्तमान काल में तो पाँच विदेहक्षेत्रों में पाँच कल्याणक के स्वामी सिर्फ २० तीर्थंकर ही विराजमान हैं। दो और तीन कल्याणक के धारक तीर्थंकर भी वहाँ उत्पन्न होते रहते हैं।

वर्तमान २० विहरमान तीर्थंकर भगवंतों के नाम

१-जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र में चार-सीमंधर, युगमंधरस्वामी तो मेरु की पूर्व दिशा में प्रथम दो आर्य खंडों में हैं और बाहु, सुबाहु स्वामी मेरुगिरि के पश्चिम दिशा में समीप के दो आर्य खंडों में हैं।

धातकी खंड में दो मेरुगिरि संबंधी दो विदेहक्षेत्र में उपरोक्त विधि से ८ तीर्थंकर हैं—श्री सुजात-स्वयंप्रभ, ऋषभानन्-अजितवीर्य, श्री सूरप्रभ-विशालकीर्ति, श्रीवज्रधर-चन्द्रानन, ८ तीर्थंकर पुष्करार्ध द्वीप में हैं—श्री चंद्रबाहु-भुजंगम, श्री ईश्वर स्वामी-नेमिनाथ,

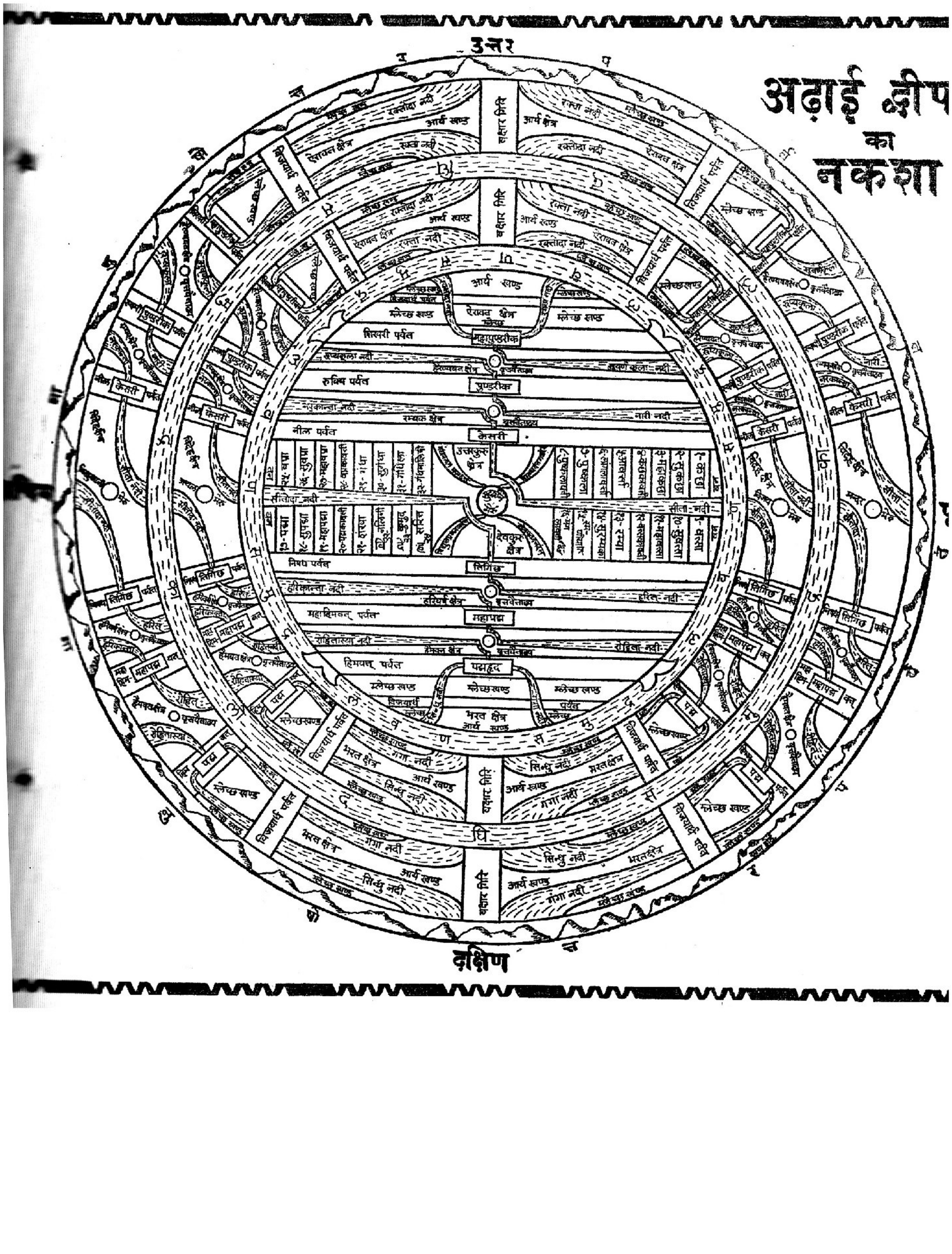
अढ़ाई द्वीप
का
नकशा
उत्तर
दक्षिण
शिखरी पर्वत
रुक्मि पर्वत
नील पर्वत
निषध पर्वत
महाहिमवत् पर्वत
हिमवत् पर्वत
महापुण्डरीक
पुण्डरीक
केसरी
तिगिंछ
महापद्म
पद्मद्रह
उत्तरकुरु क्षेत्र
देवकुरु क्षेत्र
ऐरावत क्षेत्र
भरत क्षेत्र
आर्य खण्ड
म्लेच्छ खण्ड
सीतोदा नदी
सीता नदी
गंगा नदी
सिन्धु नदी
विजयार्ध पर्वत
इष्वाकार गिरि

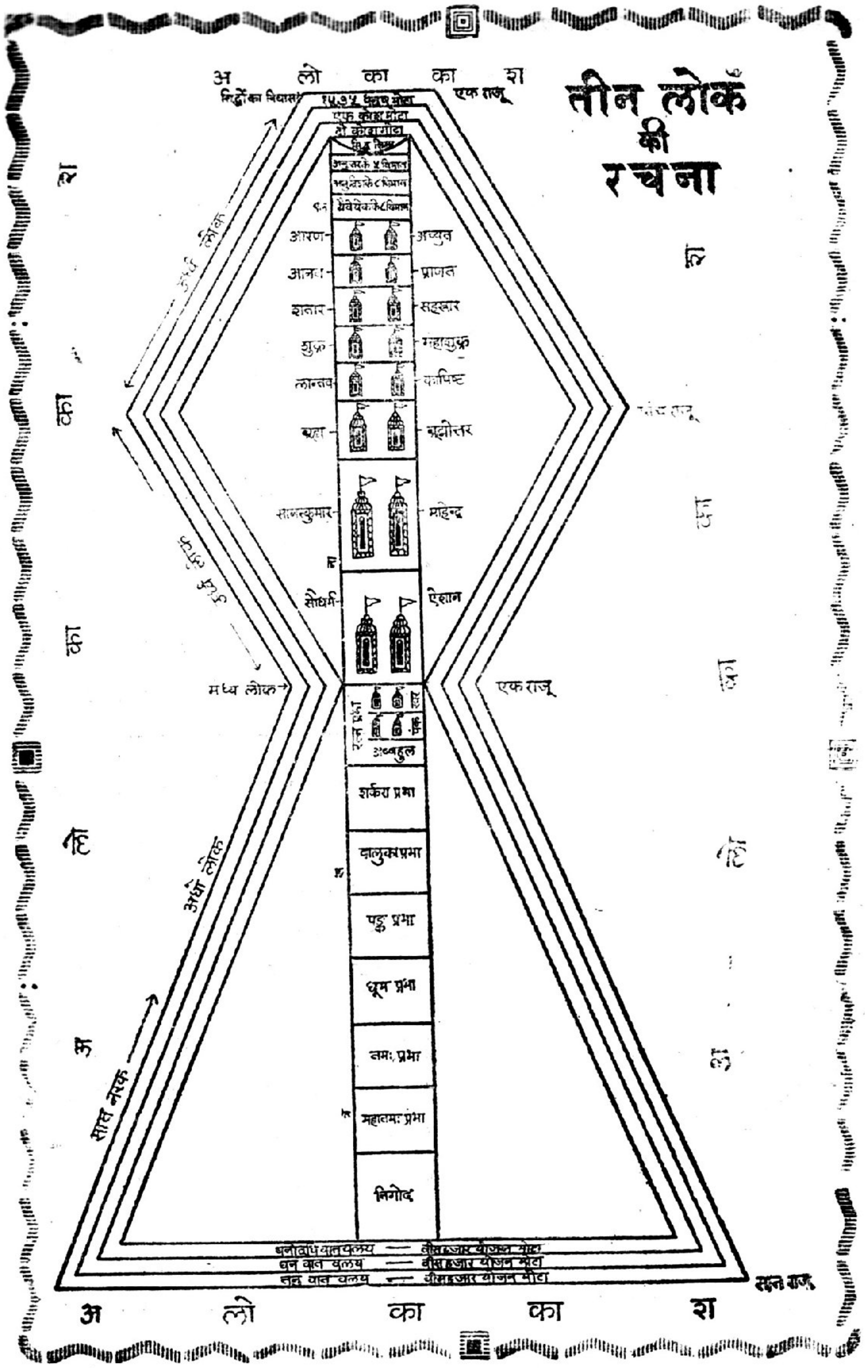

'जैनविजय' प्रेस—सूरत।

श्री वीरसेन–महाभद्र, श्री देवयश–अजितवीर्य, उन सात तीर्थंकरों को परम भक्ति सहित मेरी त्रिकाल वंदना हो।

उन प्रत्येक तीर्थंकर का शरीर ५०० धनुष ऊँचाईवाला सात कुधातुओं से रहित सब केवली भगवान को जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, अरति, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिंता, स्वेद, राग–द्वेष और मरण ये १८ दोष जरा भी नहीं होते। अक्रम, युगपत् अखंड ज्ञानदर्शन उपयोग होता है; प्रत्येक जिन केवलज्ञानी को १८ दोष रहितपना होता है। वहाँ पंचकल्याणक के धारक सब तीर्थंकरों को आयुष्य एक कोटि पूर्व का होता है। १ पूर्व के ७०५६,०००,००००००० वर्ष अर्थात् सत्तर लाख कोटि और छप्पन हजार कोटि वर्ष।

विशेष में अजितनाथ भगवान के निर्वाण के समय में १७० तीर्थंकर ढाई द्वीप में थे तब उसी समय दो छह मास के संधिकाल से एक–एक मुहुर्त में १२१६ जीव मोक्षदशा को प्राप्त हुए और आगे पीछे के दो छह मास में मोक्ष का अंतर पड़ा।

(बृ० जैन शब्दार्णव भाग–१ मास्टर विहारीदास चैतन्य बिजनोर द्वारा प्रकाशित श्री शांतिचंद जैन, पृष्ठ १८१)

['णमो अहताणं' इस पद द्वारा तीनों काल के अनंत तीर्थंकरों और केवली भगवंतों को नमस्कार होता है, उसीप्रकार पाँचों परमेष्ठी में समझना।

'नमो' न बोलकर 'णमो' उच्चार ही योग्य है कारण कि वह वर्ण अक्षर नाभिस्थान से–शरीर के मध्यस्थान से उत्पन्न होता है जो सर्वांग में उत्साह और चैतन्य की जागृति बताता है।

पाँच पद में आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं, वह सात तत्त्व में से कौन सा तत्त्व है? उत्तर–भावसंवर, भाव निर्जरातत्त्व। उनके नामांतर—मोक्षमार्ग, रत्नत्रयसाधकदशा, अपूर्ण निर्मलदशा, मोक्ष का साधन तत्त्व और गुरुतत्त्व है। अरहंत और सिद्धपद है, वह मोक्षतत्त्व, साध्यतत्त्व अर्थात् आत्मा की परिपूर्ण निर्मल दशा है; देवतत्त्व है।]

नोंध—१६० विदेहक्षेत्र और उनमें नित्य विद्यमान २० तीर्थंकरों और भरत–ऐरावत क्षेत्रों का वर्णन जानने के लिये त्रिलोक प्रज्ञप्ति ग्रंथ तथा नीचे चार्ट नं०१–२ नोट सहित देखिये। [आधार ब० जैन शब्दार्णव भाग–१ पता—श्री शांतिचंद्र जैन, पोस्ट बिजनौर (उ०प्र०)]

चार्ट नं० १

जंबूद्वीप के सुदर्शन मेरु संबंधी विदेह क्षेत्र के ३२ उपखंड

संख्या	विदेह के देश का नाम	राजधानी मुख्य नगरी	पूर्व विदेह का वर्णन
१	कच्छा	क्षेमा	यह आठ क्षेत्र सुदर्शन मेरु की पूर्व दिशा में सीता नदी के उत्तर किनारे पर और मेरु पर्वत के निकट भद्रशालवन की वेदी से लेकर लवण समुद्र के निकट देवारण्य की वेदी तक क्रम से पश्चिम से पूर्व पंक्तिबद्ध क्रमसर है। यह कच्छादि देशों का विभाग करनेवाला चित्रकूट, पद्मकूट, नलिन, एकशैल इन चार वक्षारगिरि और गाधवती, द्रहवती, पंकवती ये तीन विभंगा नदी है जो क्रम से एक नदी एक गिरि, एक नदी एक गिरि इस प्रकार उन आठ देशों के बीच में पड़कर उनकी सीमा और विभाग बताते हैं, उसको पूर्व विदेह कहते हैं।
२	सुकच्छा	क्षेमपुरी	
३	महाकच्छा	अरिष्टा	
४	कच्छकावती	अरिष्टपुरी	
५	आवर्त्ता	खंगा	
६	लांगलावती (मंगलावती)	मंजूषा	
७	पुष्कला	औषधी	
८	पुष्कलावती	पुंडरीकिणी	
९	वत्सा	सुसीमा	यह आठ क्षेत्र सुदर्शन मेरु की पूर्व दिशा के दक्षिण किनारे लवण समुद्र के निकट के देवारण्यवन की वेदी से मेरु के निकट के भद्रशाल वन की वेदी तक क्रमसर पूर्व से पश्चिम है, यह वत्सादि देशों के बीच २ चित्रकूट, वैश्रवण, अंजनात्मा और अंजन यह चार वक्षार पर्वत हैं और तप्तजला, मत्तजल, उन्मत्तजला ये तीन विभंगा नदी क्रम से एक पर्वत एक नदी इसप्रकार बीच में पड़कर उन देशों की परस्पर सीमा और विभाग बताते हैं उसको भी पूर्व विदेहक्षेत्र कहा गया है।
१०	सुवत्सा	कुण्डला	
११	महावत्सा	अपराजिता	
१२	वत्सकावती	अभंकरा	
१३	रम्या	अंका	
१४	सुरम्याका	पद्मावती	
१५	रमणीया	शुभा	
१६	मंगलावती	रत्नसंचया	

संख्या	विदेह के देश का नाम	राजधानी मुख्य नगरी	पूर्व विदेह का वर्णन
			पश्चिम विदेह का वर्णन—
१७	पद्मा	अवश्पुरी	यह आठ उपखंड-विदेह क्षेत्र-सुदर्शन मेरु की
१८	सुपद्मा	सिंहपुरी	पश्चिम दिशा में सीतोदा नदी की दक्षिण और मेरु के
१९	महापद्मा	महापुरी	निकट भद्रशालवन की वेदी से लवण समुद्र के निकट
२०	पद्मकावती	विजयपुरी	देवारण्य की वेदी तक क्रम से पूर्व पश्चिम है।
२१	शंखा	अरजा	यह पद्मा आदि देशों की पारस्परिक सीमा सूचक
२२	नलिनी	विरजा	श्रद्धावान, विजठवान, आशीविष, सुख वह यह चार
२३	कुमदा	अशोका	वक्षारगिरि और क्षीरोदा, सीतादा, श्रोतोवाहनी ये तीन
२४	सरिता	वीतशोका	विभंगा नदी है जो एक गिरी और एक नदी, एक गिरी
	(नलिनावती)		एक नदी, इसप्रकार क्रम से बीच में पड़कर उन आठ
			देशों की परस्पर सीमा और विभाग बताते हैं। (उसको
			पश्चिम विदेह कहा गया है।)
२५	वप्रा	विजया	यह आठ उपखंड-विदेहक्षेत्र सुदर्शन मेरु की
२६	सुवप्रा	वैजयंती	पश्चिम दिशा में सीतोदा नदी की उत्तर और लवण समुद्र
२७	महावप्रा	जयंता	के समीप देवारण्यवन की वेदी से मेरु पर्वत के समीप के
२८	वप्रकावती	अपराजिता	भद्रशालवन की वेदी तक क्रमबद्ध पश्चिम और पूर्व है।
२९	गंधा (वल्गु)	चक्रपुरी	यह वप्रादि विजय नामक देशों का परस्पर विभाग
३०	सुगंधा	खड्गपुरी	बतानेवाले चंद्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल, देवमाल यह
	(सुवल्गु)		चार वक्षार पर्वत, तथा गंभीरमालिनी, फेनमालिनी,
३१	गंधिला	अयोध्या	ऊर्मिमालिनी यह तीन विभंगा नदी उनकी बीच-बीच
३२	गंधमालिनी	अवध्या	सीमा के ऊपर एक-एक पर्वत एक-एक नदी इसप्रकार
	(गंधलावती)		क्रमसर है, यह पद्मा आदि १६ विदेह देश मेरुगिरि की
			पश्चिम दिशा में होने से पश्चिमविदेहक्षेत्र कहा गया है।

नोंध:—इसप्रकार यह जम्बूद्वीप के विदेहक्षेत्र के ३२ उपखंड हैं, उसमें उत्कृष्ट तो ३२ तीर्थंकर होते हैं और जघन्य काल में चार तीर्थंकर होते हैं। सीमंधर आदि जो २० नाम हैं, वह तो शाश्वत हैं। ३२ देशों में किसी न किसी देश में उस नाम के तीर्थंकर होते ही हैं। आज वर्तमान जम्बूद्वीप के मेरु समीप पूर्व पश्चिम दिशा के दो-दो देशों में क्रमसर चार तीर्थंकर सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु है। इसप्रकार धातुकी खंड द्वीप और पुष्करार्ध द्वीप के २+२=४ मेरु के संबंध में जानना। उपरोक्त १६० विदेहक्षेत्रों में जिसप्रकार तीर्थंकरों की संख्या कम से कम २० और उत्कृष्ट १६० होती है। कभी भी २० से कम नहीं हो सकती। इसप्रकार अर्धचक्री (नारायण-प्रतिनारायण) का भी समझना। (नारायण का दूसरा नाम वासुदेव है, यह पदवी का नाम है।) (बृ० जैन शब्दार्णव प्रथम भाग में से)

चार्ट नं० २

ढाई द्वीप के पाँच मेरु संबंधी पाँच विदेहक्षेत्रों के १६० विजय-विदेह खंड उनमें से २० क्षेत्र में २० तीर्थंकर विद्यमान हैं, उनका वर्णन:—

नं०	नाम	लक्षण	स्थान	माता	पिता	जन्म नगरी
१	सीमंधर	वृषभ	सुदर्शन मेरु सीता नदी की उत्तर दिशा	सत्यवती	श्रेयांस	पुंडरीकिणी
२	युगमंधर	हाथी	सु० मेरु सीता नदी की दक्षिण दिशा	सुतारा	दृढ़राज	विजयवती
३	बाहु	मृग	सु० सीतोदा की दक्षिण	विजया	सुग्रीव	सुसीमां
४	सुबाहु	कपि	सु० सीतोदा की उत्तर	सुनंदा	निशाढिल-टिल	अयोध्या
५	संजातक	सूर्य	विजय मेरु सीता नदी की उत्तर	देवसेना	देवसेन	अलकापुरी
६	स्वयंप्रभ	चन्द्र	'' '' दक्षिण	सुमंगला	मित्रभूत	विजयानगर
७	ऋषभानन	सिंह	'' सीतोदा के दक्षिण	वीरसेना	कीर्तिराज	सुसीमा
८	अनंतवीय	हाथी	'' '' उत्तर	मंगला	मेघराज	अजोध्या

नं०	नाम	लक्षण	स्थान	माता	पिता	जन्म नगरी
९	सूरप्रभ	सूर्य	अचलमेरु सीता नदी के उत्तर	भद्रा	नागराज	विजयपुरी
१०	विशालकी	चन्द्र	अचलमेरु सीता नदी दक्षिण	विजया	विजयपति	पुंडरीकिणी
११	वज्रधर	शंख	” ” ”	सरस्वती	पद्मार्थ	सुसीमा
१२	चन्द्रानन	वृषभ	” ” उत्तर	पद्मावती	वाल्मीकी	पुंडरीकिणी
१३	चन्द्रबाहु	कमल	मंदर मेरु सीता नदी के उत्तर	सुरेणुका	देवनंदी	विनीता, अयोध्या
१४	भुजंगप्रभ	चन्द्र	” ” दक्षिण	महिमा	महावल	विजयानगर
१५	ईश्वर	सूर्य	” ” ”	ज्वाला	गलसेन	सुसीमा
१६	नेमिप्रभ	वृषभ	” ” उत्तर	सेना	वीरसेन	अयोध्या
१७	वीरसेन	ऐरावत	विद्युतमाली मेरु सीता नदी के ऊपर	सूर्या	पृथ्वीपाल	पुंडरीकिणी
१८	महाभद्र	चन्द्र	” ” दक्षिण	उमादेवी	देवराज	विजयानगर
१९	देवयशः	स्वस्तिक	” ” ”	गंगादेवी	श्रवभूत	सुसीमा
२०	अजितवीर्य	कमल	” ” उत्तर	कनका	सुबोध	अयोध्या

प्यारा कौन ?

हे जीव! तू विचार कर—कि तुझे पैसा प्यारा है या अपना जीवन? दोनों में से कौन तुझे प्यारा है? हमें तो लगता है तुझे पैसे की तुलना में अपना जीवन प्यारा नहीं है। यदि अपना जीवन तुझे प्यारा होता तो पैसे के लिये अपने जीवन को नहीं गमाता। पैसे के लिये तू अपने कीमती जीवन को गमा रहा है, इससे ऐसा मालूम होता है कि तुझे पैसे की अपेक्षा अपना जीवन प्यारा नहीं है, जीवन की अपेक्षा से भी पैसा तुझे अधिक प्यारा है?—रे मोह!

कहानी दूसरी

नेमि-राजुल वैराग्य

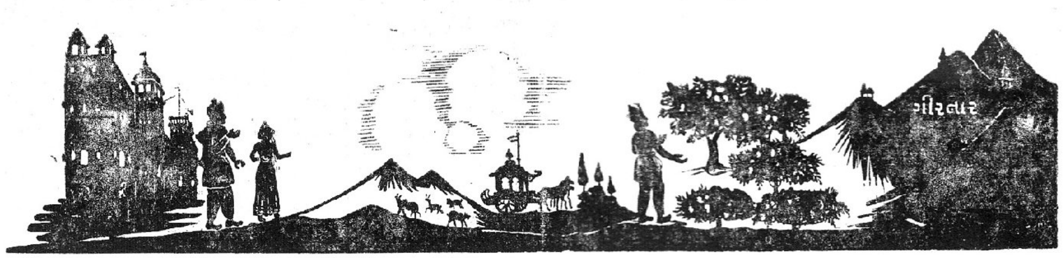

नेमिनाथ भगवान की बरात जूनागढ़ के नजदीक जैसे ही आ पहुँची, वैसे ही पशुओं का करुण चीत्कार सुनकर भगवान ने रथ रोक दिया... इस वैरागी महात्मा का हृदय पशुओं के करुण चीत्कार को कैसे सहन कर सके ? जगत में वीतरागी अहिंसा का शंख फूंकने के लिये अवतरित हुआ यह संत अपने ही निमित्त होनेवाली हिंसा को किस तरह सहन कर सके। इन्होंने रथ पीछे लौटा दिया... विवाह न करने का निश्चय कर वे तो गिरनारधाम को चले गए एवं मुनि होकर आत्मसाधना में तत्पर हो गए।

इस ओर नेमिस्वामी के रथ के लौटने का एवं उनके वैराग्य का समाचार सुनकर राजीमती ने कितना आक्रंदन किया होगा ? ....ना, ना ! यह तो राजीमती थी; न तो इसने आक्रंद किया और न ही माता-पिता के अनेक बार समझाने पर इसने अन्यत्र विवाह करने का विचार किया—इसने तो वैराग्यमार्ग अंगीकार किया। जिस मार्ग से स्वामी नेमिनाथ गये, वही मेरा मार्ग ! ऐसे दृढ़ निश्चय के साथ यह चली गई गिरनारधाम में... धन्य बन गई सौराष्ट्र की धरा।

यह नेमि और राजुल का जीवन आज भी जगत को आदर्श वैराग्य जीवन का संदेश दे रहा है।

कहानी तीसरी

लव-कुश वैराग्य

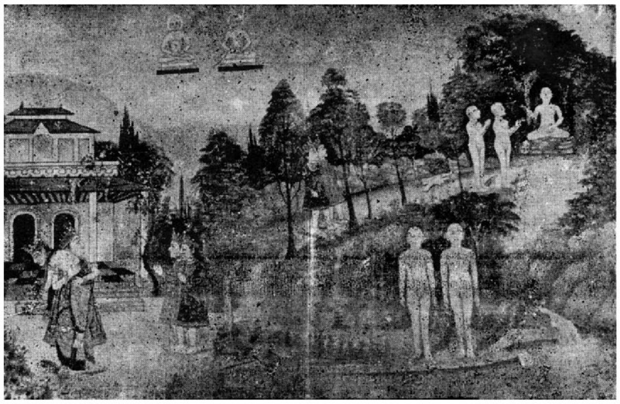

राजा रामचंद्र के दो पुत्र थे, लव और कुश। इंद्रसभा में राम और लक्ष्मण के प्रेम की प्रशंसा हुई, देव उसकी परीक्षा करने आए... उन्होंने बनावटी वातावरण बनाकर लक्ष्मण से कहा कि राजा रामचंद्र का स्वर्गवास हो गया... यह सुनते ही 'हा... राम!' ऐसा कहकर लक्ष्मणजी सिंहासन में ढल पड़े और उनके प्राणा चले गए... रामचंद्रजी तीव्र प्रेम के कारण लक्ष्मण के मृत शरीर को कन्धे पर उठाकर चारों ओर फिरते हैं।

इस ओर लव और कुश चाचा की मृत्यु और पिता की ऐसी अवस्था देखकर संसार से विरक्त हो जाते हैं... और रामचंद्रजी के पास जाकर हाथ जोड़कर कहते हैं कि 'पिताजी! इस संसार की असार स्थिति देखकर हमारा मन संसार से विरक्त हो गया है... अब हम दीक्षा लेकर मुनि हो जायेंगे और आत्मा का साधन कर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे... अत: आप आज्ञा दो। अंतर में जो सिद्ध का मार्ग दिखलाई दिया है, उसी मार्ग पर अब हम विचरेंगे—ऐसा कहकर अमृतसागर मुनिराज के पास जाकर दोनों भाईयों ने दीक्षा ले ली, वे चैतन्य में लीन होकर, केवलज्ञान प्राप्त कर पावागढ़ सिद्धक्षेत्र से मुक्त हो गए—इस पावागढ़ से पाँच करोड़ मुनिवरों ने मुक्ति प्राप्त की है। वहाँ की यात्रा के समय गुरुदेव ने गवाया था कि:—

'धन्य लव कुश मुनि आतमहित में छोड़ा सब राजपाट....
....कि तुमने छोड़ा सब संसार।
राम छोड़ा अयोध्या छोड़ा, जाना जगत् असार
....कि तुमने छोड़ा सब संसार।'

"अहा, धन्य इन राजकुमारों का जीवन"

कहानी चौथी

सीता–वैराग्य

राजा राम ने लोकापवाद के भय से सीता को त्याग दिया; पश्चात् सीता के दो पुत्रों लव–कुश ने बड़े होकर लड़ाई में राम–लक्ष्मण को हरा दिया... परस्पर परिचय होने पर सीताजी को फिर से अयोध्या ले जाने की बात हुई; सीताजी के शील संबंधी लोगों का संदेह दूर करने के लिये तथा लोगों में उनके शील की प्रसिद्धि करने के लिये रामचंद्रजी ने सीताजी की अग्नि परीक्षा योजित की। योजना के अनुसार बड़ा अग्निकुण्ड तैयार हुआ, और पंचपरमेष्ठी भगवंतों का स्मरण कर इस दहकते हुए अग्निकुण्ड में सीताजी कूद पड़ीं, सब जगह हाहाकार होने लगा...

एक तरफ यहाँ अग्नि की झलझलती ज्योति प्रकट हुई है तो दूसरी ओर एक महामुनिराज को केवलज्ञान की झलझलती ज्योति प्रगट होती है; और वहाँ उत्सव मनाने के लिये जा रहे देवों ने सीताजी की अग्निपरीक्षा का दृश्य देखा... और तुरंत ही मूसलधार बरसात द्वारा अग्नि के स्थान पर जल सरोवर बना दिया; बीच में कमल की रचना में सीताजी सुशोभित होती थीं... देवों ने सीताजी की शील की प्रशंसा की और उनकी शील महिमा को जगत में प्रसिद्ध किया।

अब राजा राम, सीता को कहते हैं, देवी! अयोध्या चलो... परन्तु धर्मात्मा सीता वैराग्यपूर्वक कहती हैं कि 'अब मुझे संसार नहीं चाहिये' अब तो मैं दीक्षा लेकर, इस असार संसार को छोड़कर आत्म–कल्याण करूँगी। ऐसा कहकर राम को और लव–कुश जैसे पुत्रों को भी छोड़कर केशों का लोंचकर पृथ्वीमति आर्यिका के संघ में चली जाती हैं। सीताजी के वैराग्य के अवसर पर रामचंद्रजी मूर्छित हो जाते हैं—यह कथा हमें शील और वैराग्य का संदेश देती है।

भारत का नवसर्जन

आज हमारे गुरुदेव पूज्य कानजी स्वामी भारत का नवसर्जन कर रहे हैं। ...भारत की सच्ची प्रगति, सच्चा नवसर्जन—जिससे कि जीवों को शांति प्राप्त हो सके, ऐसी महान क्रान्ति अध्यात्म ज्ञान के द्वारा ही हो सकती है। राष्ट्रपति अथवा महामंत्री सदृश महान पद प्राप्त कर लेने पर भी जिस शांति को जीव नहीं प्राप्त कर सकते, वह शांति अध्यात्मज्ञान के द्वारा जीव सहज मात्र से शीघ्र ही प्राप्त कर सकता है। ऐसे अध्यात्मज्ञान के द्वारा पूज्य श्री कानजी स्वामी आज भारत का नवसर्जन कर रहे हैं। जयन्ती के अवसर पर हम उनका परम भक्तिपूर्वक अभिनंदन करते हैं... और ज्ञान के प्रकाश द्वारा हमारे जीवन का वे नवसर्जन करें—यह प्रार्थना करते हैं।

सर्वज्ञ वीतराग कथित सत्योपाय के उपासक

पूज्य श्री कानजी स्वामी

आपकी बैशाख सुदी २ के शुभ दिन सोनगढ़ (सौराष्ट्र) तथा दिगम्बर जैन समाज सहित भारत के मुमुक्षु जैन समूह ने ७७वीं जन्म-जयन्ती मनाई, कारण कि आपने परिवर्तनशील संसार में अपरिवर्तन शील ज्ञायकस्वभाव चैतन्य का अपूर्व महात्म्य समझाया है। भव्य जीवों को अपने पवित्र सिद्धपद के प्रति ले जानेवाला मोक्षमार्ग का यथार्थ उपाय दर्शाया। सन्मार्ग का अनुशरणपूर्वक वीतरागी मार्ग के विमलपंथ में गमन करने की प्रबल प्रेरणा दी है, भवाटवी में भ्रमण करते जीव को सत्य की जिज्ञासा, परम तत्त्व की अपूर्व महिमा समझ और अभ्यास द्वारा सम्यक् अनेकांत मार्ग का दृढ़ निश्चय और स्वसन्मुख अनुभूति का सच्चा पुरुषार्थ आप समझा रहे हैं। अपूर्व आत्मशुद्धि के पावन संदेश जो अनुभव पूर्ण अमोघ आत्मस्पर्शी वाणी द्वारा दे रहे हैं। अनुपम स्वरूप सम्पदा के द्वारा सहजानंद परिणति का तादृश्यचित्र धर्मजिज्ञासु अध्यात्म रस

रसिक जनता के सामने पेश किया है। आत्म वैभव में से चैतन्य का स्वर्ण निधान जाहिर किया है। संसार के आधि, व्याधि, उपाधिरूप अपार चिंतारूप अग्नि से संतप्त प्राणियों के दाह को शुद्ध हृदय में से झरते हुए प्रवचनों द्वारा शांत किया है। जीवनपथ को ज्योतिर्मय बनाने के लिये अध्यात्म-ज्ञान दीपक प्रगटाया है। भोगमार्ग का त्याग करके मुक्ति साधक महायोग का अद्वितीय आलंबन लिया है। आत्मभ्रांतिरूप महारोग का क्षय करने के लिये सम्यक्त्व सुधा का पान कराया है। परम पारिणामिकभाव को ध्रुव तारक ध्येय, आधार बनाकर मोक्षनगर पहुँचाने के लिये प्रवास का प्रारम्भ कर दिया है। श्रुतसागर जिनवाणी में से अनेक महामूल्यवान अलौकिक सिद्धांतरूपी मोती एकत्र करके जगत के समक्ष प्रदर्शित किया है।

उपरोक्त सभी कार्यवाही द्वारा जिन्होंने जगत के ऊपर महान उपकार किया है। उसका यथाशक्ति स्मरण करते हुए सकल संघ आज अत्यानंद का अनुभव करता है और अंतर की भावभीगी उर्मियों से उन महापुरुष को श्रद्धांजलि देते हैं। आप शतायु हों तथा सबके जीवन पथ को उज्ज्वल करें, ऐसी नम्र प्रार्थना करते हैं।

—समस्त भक्तजन

जीवन का मूल्य

अनेक वर्षों के कठिन परिश्रम के फलस्वरूप मिली लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति को भी, जब जीवन-मरण का प्रसंग आता है, तब क्षणमात्र में जीव उस समस्त सम्पत्ति को छोड़ देता है। लाखों-करोड़ों की इस समस्त सम्पत्ति को देकर भी वह अपना जीवन बचाना चाहता है, क्षणभर जीवन के लिये वर्षों से एकत्रित की गई समस्त सम्पत्ति को क्षणभर में न्यौछावर कर देता है। इससे यह फलित होता है कि लाखों-करोड़ों की तुलना में जीवन का एक क्षण अधिक कीमती है। लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति देने पर भी 'जीवन का एक क्षण नहीं मिल सकता। इसलिये जीवन के एक-एक क्षण को जो व्यर्थ ही गँवाता है, वह लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति की अपेक्षा से भी अधिक कीमती वस्तु को नष्ट कर रहा है... जीवन का सच्चा मूल्यांकन तो धर्मसाधना द्वारा ही हो सकता है।' ऐसी धर्मसाधना के बिना ऐसे अमूल्य जीवन को जो व्यर्थ नष्ट कर रहा हो.... उसकी मूर्खता का क्या कहना!

आध्यात्मिक क्रान्ति

इस समय क्रान्ति का युग है, जहाँ देखो वहाँ बस, क्रान्ति... क्रान्ति और क्रान्ति! वर्षों के वर्षों से अनेक प्रकार क्रान्तियाँ करने पर भी जगत को अभी सुख की झाँकी भी तो नहीं दिखती?—उल्टा दुःख बढ़ता है ऐसा लगता है! तो जिज्ञासु को विचारना रहा कि यह राजकीय क्रान्ति अथवा औद्योगिक-क्रान्ति अथवा शैक्षणिक-क्रान्ति—यह सब क्रान्ति सिवाय की दूसरी एक क्रान्ति ही यथार्थ में सुख का कारण है—ऐसी आध्यात्मिक क्रान्ति ही जगत के जीवों को सुखी कर सकती है। अर्थात् ऐसे आध्यात्मिक-क्रान्तिकारी कोई सन्त को शोधना चाहिये। ऐसे आध्यात्मिक-क्रान्तिकारी सन्त मिलना इस तरह तो बहुत दुर्लभ होता है, वर्षों तक मुश्किल से कोई सन्त दिखता है,—परन्तु इस समय सबके सद्भाग्य से ऐसे क्रान्तिकारी सन्त को खोजने दूर जाना पड़े वैसा नहीं, इस समय भारत में अपने बीच ही ऐसे क्रान्तिकारी सन्त विराज रहे हैं।—**एक सन्त हैं पूज्य श्री कानजी स्वामी।**

अहा, तीर्थंकरों के और सन्तों के आत्मिक स्वाधीनता के संदेश ग्रहण कर और कुमार्ग की बेड़ी के बंधन तोड़कर जीवन में उनने जो आत्मिक क्रान्ति की है, वह बेमिसाल (अजोड़) है... इतना ही नहीं, भारत के जीवों को भी इसी मार्ग पर आने का आह्वान करके अध्यात्म की जो महान क्रान्ति उनने रची है, वह जैनशासन के सुवर्ण पट पर हीरे के अक्षरों से अंकित की गयी है। यह क्रान्तिकार की वीर-आवाज (पुकार) सुनकर भारत के कोने-कोने से जागृत हुये हजारों जीवों ने पराधीन दृष्टि के बंधन की बेड़ी तोड़ डाली है; स्वाधीन दृष्टि के पुरुषार्थ निकट विवशता-लाचारी जैसी पराधीनवृत्ति के दुर्ग टूट पड़े हैं और अध्यात्म की एक महान क्रान्ति के विजय का धर्मध्वज जैनशासन के ऊँचे आकाश में आनन्द में लहरा रहा है। इस धर्मध्वज की छाया में जीवन में आध्यात्मिक आन्दोलन जगाकर, आत्मा में धर्म क्रान्ति द्वारा परम शान्ति प्राप्त करना, वह अपना कर्तव्य है।

जगत के धर्म राजा ने जाहिर किया हुवा

स्वतंत्रता का ढिंढोरा

जैसे राजा की ओर से प्रजा के सुख के लिये अनेक प्रकार के ढिंढोरे पीटे जाते हैं, सारी प्रजा स्वयं के सुख की, स्वयं की स्वाधीनता की बात सुनकर प्रसन्न होती है, और यह ढिंढोरा जाहिर करनेवाले राजा के प्रति भी बहुमान जागता है। प्रजा की स्वाधीनता का अथवा सुख का विरोध करनेवाला सजा का पात्र होता है। उसीप्रकार जगत के धर्मराजा सर्वज्ञदेव ने जगत के प्राणियों के स्वाधीन सुख के लिये स्वतंत्रता का दिव्य ढिंढोरा प्रसिद्ध किया है कि हे जीवो! तुम्हारी सर्व सत्ता, सर्व सम्पत्ति, सर्व गुण तुम्हारे में स्वाधीन हैं, उनमें दूसरे कोई का अधिकार अथवा हस्तक्षेप नहीं; स्वाधीनपन से तुम तुम्हारे सुख को भोगो। अहा, ऐसी स्वतंत्रता का ढिंढोरा सुनकर किसको खुशी न हो ? और इस धर्मराजा के प्रति किसको बहुमान न जागे!! जो ऐसी स्वतंत्रता के ढिंढोरे का विरोध करता है, वह समस्त प्राणियों के स्वाधीन सुख का विरोध करता है, उससे वह महान सजा का (अर्थात् घोर संसाररूपी जेल का) पात्र है। मुमुक्षु सज्जनों को ऐसी स्वाधीनता का ढिंढोरा सुनानेवाले के प्रति परम आदर बहुमान जागता है।

इस भरतक्षेत्र में अढाई हजार वर्ष पहिले भगवान महावीर ने और इस समय में विदेहक्षेत्र में भगवान सीमंधर वगैरह तीर्थंकर भगवंतों ने ऐसी स्वतंत्रता का जो ढिंढोरा दिव्यध्वनि के नाद से जगत में प्रसिद्ध किया, कुन्दकुन्दादि महान संतों ने जो ढिंढोरा ग्रहण कर प्रसरित किया, यही स्वाधीनता के ढिंढोरे का पावन संदेश आज अपने को सुना रहे हैं गुरु कहान! अहा, कैसी स्वतंत्रता! सुख का कैसा सुंदर मार्ग! हे भाई! यह स्वतंत्रता के संदेश वाहक संत कहते हैं कि तेरा आत्मा, तेरे गुण, तेरा परिणमन—यह सब तेरे में स्वतंत्र हैं; तू तेरे से ही परिपूर्ण है, जगत की चाहे जैसी अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के बीच स्वयं स्वयं के भाव में निश्चलरूप में ठहर सके, ऐसा सामर्थ्य तेरे में है।—स्वीकार कर एक बार तेरी स्वाधीनता को! और देख तेरे अंतर में! वहाँ कैसा सुख भरा है! बस, ऐसे आत्मा को पहिचानकर उसका स्वाश्रय करने की भगवान धर्मराजा तीर्थंकरों की आज्ञा है। धर्मराजा की इस आज्ञा को जो नहीं स्वीकारे, वह स्वयं का अपराध दूसरे पर डालेगा, दूसरा मुझे सुखी-दु:खी करे—ऐसा मानेंगे, वे भगवान के धर्मराज्य में गुनहगार (अपराधी) गिने जायेंगे। अरे

जीव! क्या तू बाह्य पदार्थों के संयोग ऊपर आधार रखकर उसमें से सुख लेना चाहता है ?—कभी नहीं मिले तुझे सुख। क्या पराधीनता में सुख होता है ? सुख तो स्वाधीनता में होता है। इसलिये यह स्वतंत्रता की जोर की पुकार सुनकर जगत... स्वाधीन पुरुषार्थ के झँकार में कोई अनोखे आह्लाद का तुझे अनुभव होगा।

समाधि-मरण स्वरूप

[आचार्यकल्प श्री पंडित टोडरमलजी के सहपाठी और धर्म प्रभावना में उत्साह प्रेरक ब्रह्मचारी राजमलजी कृत 'ज्ञानानंद निर्भर निजरस श्रावकाचार' नामक ग्रंथ में से यह अधिकार बहुत सुंदर जानकर धर्म जिज्ञासुओं के लिये यहाँ दिया जाता है।]

हे भव्य! तू सुन! अब समाधिमरण का लक्षण वर्णन किया जाता है। समाधि नाम निकषाय[१] का है। शांत परिणामों का है, कषायरहित शांत परिणामों से मरण होना समाधिमरण है। संक्षिप्तरूप से समाधिमरण का यही वर्णन है। विशेषरूप से कथन आगे किया जा रहा है।

(१) क्रोध, मान, माया, और लोभ ये चार कषाय हैं।

सम्यक् ज्ञानी पुरुष का यह सहज स्वभाव ही है कि समाधिमरण ही की इच्छा करता है, उसकी हमेशा यही भावना रहती है, अन्त में मरण समय निकट आने पर वह इस प्रकार सावधान होता है जिसप्रकार वह सोया हुआ सिंह सावधान होता है, जिसको कोई पुरुष ललकारे कि हे सिंह! तुम्हारे पर बैरियों की फौज आक्रमण कर रही है, तुम पुरुषार्थ करो और गुफा से बाहर निकलो। जब तक बैरियों का समूह दूर है, तब तक तुम तैयार हो जाओ और बैरियों की फौज को जीत लो। महान पुरुषों की यही रीति है कि वे शत्रु के जागृत होने से पहले तैयार होते हैं।

उस पुरुष के ऐसे वचन सुनकर शार्दूल तत्क्षण ही उठा और उसने ऐसी गर्जना की कि मानो आषाढ़ मास में इन्द्र ने ही गर्जना की हो! सिंह की गर्जना सुनकर बैरियों की फौज में जो हाथी, घोड़ा आदि थे, वे सब कंपायमान हो गये और वे सिंह को जीतने में समर्थ नहीं हुए। हाथियों ने आगे कदम रखना बंद कर दिया, उनके हृदय में सिंह के आकार की छाप पड़ गयी

है। इसलिये वे धैर्य नहीं धारण कर रहे, क्षण-क्षण में निहार करते हैं, उनसे सिंह के पराक्रम का मुकाबला नहीं किया जा सकता। (इस उदाहरण को अब सम्यग्ज्ञानी की अपेक्षा से बताते हैं)। सम्यग्ज्ञानी पुरुष तो शार्दूल सिंह है और अष्ट कर्म[२] बैरी हैं। सम्यग्ज्ञानी रूपी सिंह मरण के समय इन अष्टकर्म रूपी बैरियों को जीतने के लिये विशेष रूप से उद्यम करता है।

(२) कर्म ८ हैं ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय।

मृत्यु को निकट जानकर सम्यग्ज्ञानी पुरुष सिंह की तरह सावधान होता है और कायरपने को दूर ही से छोड़ देता है।

सम्यग्दृष्टि कैसा है ?

उसके हृदय में आत्मा का स्वरूप दैदीप्यमान प्रकटरूप से प्रतिभासता है। वह ज्ञान ज्योति को लिये आनन्दरस से परिपूर्ण है।

वह अपने को साक्षात् पुरुषाकार अमूर्तिक, चैतन्य धातु का पिण्ड, अनन्त गुणों से युक्त चैतन्यदेव ही जानता है। उसके अतिशय से ही वह परद्रव्य के प्रति रंचमात्र भी रागी नहीं होता है।

सम्यग्दृष्टि रागी क्यों नहीं होता है ?

वह अपने निज स्वरूप को ज्ञाता, दृष्टा, परद्रव्य से भिन्न, शाश्वत और अविनाशी जानता है और परद्रव्य को क्षणभंगुर अशाश्वत, अपने स्वभाव से भलीभाँति भिन्न जानता है। इसलिए सम्यग्ज्ञानी जैसे डरे पुरुष मरण के समय इसप्रकार की भावना व विचार करता है:—

''मुझे ऐसे चिह्न दिखाई देने लगे हैं, जिनसे मालूम होता है कि अब इस शरीर की आयु थोड़ी है, इसलिये मुझे सावधान होना उचित है, इसमें (देर) विलम्ब करना उचित नहीं है। जैसे योद्धा युद्ध की भेरी सुनने के बाद बैरियों पर आक्रमण करने में क्षणमात्र की भी देर नहीं करता है और उसके वीर रस प्रकट होने लगता है कि 'कब बैरियों से मुकाबला करूँ और कब उनको जीतूँ।''

वैसे ही मेरे भी अब काल को जीतने की इच्छा है, इसलिए हे कुटुम्ब परिवार वालों! सुनो! देखो! इस पुद्गल पर्याय का चरित्र! यह देखते-देखते उतपन्न होती है और देखते ही नष्ट हो जाती है, सो मैं तो पहले ही इसका विनाशीक स्वभाव जानता था। अब इसके नाश का समय आ गया है। इस शरीर की आयु तुच्छ रह गई है और उसमें भी प्रति समय क्षण-क्षण कम हुआ

जाता है किन्तु मैं ज्ञाता, दृष्टा हुआ इसके (शरीर का) नाश को देख रहा हूँ। मैं इसका पड़ोसी हूँ न कि कर्ता या स्वामी। मैं देखता हूँ कि इस शरीर की आयु कैसे पूर्ण होती है और कैसे इसका (शरीर का) नाश होता है, यही मैं तमासगीर की तरह देख रहा हूँ। अनंत पुद्गल परमाणु इकट्ठे होकर शरीर की पर्यायरूप परिणमते हैं, शरीर कोई भिन्न पदार्थ नहीं है और मेरा स्वरूप भी नहीं है। मेरा स्वरूप तो एक चेतन स्वभाव, शाश्वत अविनाशी है, उसकी महिमा अद्भुत है, सो मैं किससे कहूँ ?

देखो ! इस पुद्गल पर्याय का महात्म्य ! अनंत परमाणुओं का परिणमन इतने दिन एक-सा रहा, यह बड़ा आश्चर्य है। अब वे ही पुद्गल के विभिन्न परमाणु अन्य-अन्य रूप परिणमन करने लगे हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या ? लाखों मनुष्यों के इकट्ठे होकर मिलने से 'मेला' होता है। यह मेला पर्याय शाश्वत रहने लगे तो आश्चर्य समझना चाहिये। इतने दिन तक लाखों मनुष्यों का परिणमन एक-सा रहा, ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य आश्चर्य मानता है। तत्पश्चात् वे लाखों मनुष्य भिन्न-भिन्न दशों दिशाओं में चले जाते हैं, तब 'मेला' का नाश हो जाता है। यह तो इन पुरुषों का अपना-अपना परिणमन ही है, जो कि इनका स्वभाव है, इसमें आश्चर्य क्या ? इसीप्रकार शरीर का परिणमन नाशरूप होता है, यह स्थिर कैसे रहेगा ?

अब इस 'शरीर' पर्याय को रखने में कोई समर्थ नहीं है। किसी के समर्थ न होने का कारण बताते हैं:—तीन लोक में जितने पदार्थ हैं, वे सब अपने-अपने स्वभावरूप परिणमन करते हैं। कोई किसी का कर्ता नहीं है, कोई किसी का भोक्ता नहीं, स्वयं ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही नष्ट होता है, स्वयं ही मिलता है, स्वयं ही बिछुड़ता है, स्वयं ही गलता है तो मैं इस शरीर का कर्ता और भोक्ता कैसे ? और मेरे रखने में यह (शरीर) कैसे रहे ? और उसी प्रकार मेरे दूर करने से यह दूर कैसे हो जाय ? मेरा इसके प्रति कोई कर्तव्य नहीं है, मैं पहले बेकार ही अपना कर्तव्य मानता था। यह न्याययुक्त ही है कि जिसका किया कुछ हो नहीं, वह परद्रव्य का कर्ता होकर उसे अपने स्वभाव के अनुसार परिणमाना चाहे तो वह दु:ख पावे ही पावे।

मैं तो इस ज्ञायकस्वभाव ही का कर्ता और भोक्ता हूँ और उसी का वेदन एवं अनुभव करता हूँ। इस शरीर के जाने से मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं और इसके रहने से कुछ सुधार भी नहीं है। यह तो प्रत्यक्ष ही काष्ठ या पाषाण की तरह अचेतन द्रव्य है। काष्ठ, पाषाण और शरीर में कोई भेद नहीं है। इस शरीर में एक जानने का ही चमत्कार है, सो वह तो मेरा स्वभाव है, न कि

शरीर का। शरीर तो प्रत्यक्ष ही मुर्दा है। मेरे निकल जाने पर इसे जला देते हैं। मेरे ही मुलाहिजे से इस शरीर का जगत द्वारा आदर किया जाता है किन्तु जगत को यह खबर नहीं है कि आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न हैं। इसी से जगत के लोग भ्रम के कारण ही, इस शरीर से, अपना जानकर, ममत्व करते हैं और इसको नष्ट होते देखकर दु:खी होते हैं और शोक करते हैं कि ''हाय! हाय!! मेरा पुत्र, तू कहाँ गया? हाय! हाय!! मेरा पति, तू कहाँ गया? हाय! हाय!! मेरी पुत्री, तू कहाँ गई? हाय पिता! तू कहाँ गया? हाय इष्ट भ्रात! तू कहाँ गया?'' इसप्रकार अज्ञानी पुरुष पर्यायों को नष्ट होते देखकर दु:खी होते हैं और महादु:ख एवं क्लेश को पाते हैं किन्तु ज्ञानी पुरुष ऐसे विचार करते हैं:—'किसका पुत्र? किसकी पुत्री? किसका पति? किसकी स्त्री? किसकी माता? किसका पिता? किसकी हवेली? किसका मंदिर? किसका माल? किसका आभूषण और किसका वस्त्र? ये सब सामग्री झूठी, विनाशीक है। अत: ये सब उसी प्रकार से अस्थिर हैं, जैसे स्वप्न में दिखा हुआ राज्य, इन्द्रजाल द्वारा बनाया हुआ तमाश, भूतों की माया या आकाश में बादलों की शोभा। ये सब वस्तुयें देखने में रमणीक लगती हैं किन्तु इनका स्वभाव विचारें तो कुछ भी नहीं है। यदि वस्तु होती तो स्थिर रहती और नष्ट क्यों होती? ऐसा जानकर मैं त्रिलोक में जितनी पुद्गल की पर्यायें हैं, उन सबसे ममत्व छोड़ता हूँ और अपने शरीर से भी ममत्व छोड़ता हूँ, इसी से इसके नष्ट होने से मेरे परिणामों में अंशमात्र भी खेद नहीं है। ये शरीरादि सामग्री चाहे जैसे परिणमें, मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है। चाहे ये कम हों, चाहे भीगो, चाहे नष्ट हो जावो, मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं है।

अहो देखा! मोह का स्वभाव? ये सब सामग्री प्रत्यक्ष ही परवस्तु है और उसमें भी वे विनाशीक हैं और इस भव और परभव में दु:खदाई हैं तो भी यह संसारी जीव इन्हें अपना समझकर रखना चाहता है, मैं ऐसा चरित्र देखकर ही ज्ञान-दृष्टि वाला हुआ हूँ। मेरा केवल 'ज्ञान' ही अपना स्वभाव है और उसे ही देखता हूँ और मृत्यु का आगमन देखकर नहीं डरता हूँ। काल तो इस शरीर का लागू है मेरा लागू नहीं है। जैसे मक्खी, मिठाई आदि स्वादिष्ट वस्तुओं पर ही जाकर बैठती है किन्तु अग्नि पर कदाचित् भी नहीं बैठती है; उसीप्रकार काल (मृत्यु) भी दौड़-दौड़ कर शरीर ही को पकड़ता है। और मेरे से तो दूर ही से भागता है। अनादि काल से अविनाशी, चैतन्य, त्रिलोक द्वारा पूज्य आत्मा में काल का जोर नहीं चलता। इसप्रकार कौन मरता है? और कौन जन्म लेता है? और कौन मृत्यु का भय करे? मुझे तो मृत्यु

दिखती नहीं है। जो मरता है वह तो पहले ही मरा हुआ था और जीता है, वह पहले ही जीता था। जो मरता है, वह जीता नहीं और जीता है, वह मरता नहीं है। किन्तु मोहदृष्टि के कारण विपरीत मालूम होता था। अब मेरा मोहकर्म नष्ट हो गया; इसलिए जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा ही मुझे दृष्टिगोचर होता है। उसमें जन्म, मरण, दुःख, सुख दिखाई नहीं पड़ते। अतः मैं अब किस बात का सोच-विचार करूँ ?

मैं तो चैतन्य शक्तिवाला शाश्वत बना रहनेवाला हूँ। उसका अवलोकन करते हुए दुःख का अनुभव कैसे हो ? मैं कैसा हूँ ? मैं ज्ञानानंद, स्वात्मरस से परिपूर्ण हूँ और शुद्धोपयोगी हुआ ज्ञानरस का आचरण करता हूँ और ज्ञानांजलि द्वारा उस अमृत का पान करता हूँ। वह अमृत मेरे स्वभाव से उत्पन्न हुआ है; इसलिये वह स्वाधीन है, पराधीन नहीं है; इसलिये मुझे उसके आस्वादन में खेद नहीं है।

'मैं कैसा हूँ ?'

मैं अपने निज स्वभाव में स्थित हूँ, अकंप हूँ। मैं ज्ञानामृत से परिपूर्ण हूँ। मैं दैदीप्यमान ज्ञानज्योति युक्त अपने ही निज-स्वभाव में स्थित हूँ।

देखो ! इस अद्भुत चैतन्यस्वरूप की महिमा ! उसके ज्ञानस्वभाव में समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव झलकते हैं किंतु वह स्वयं ज्ञेयरूप नहीं परिणमता है और उस झलकने में (जानने में) विकल्प का अंश भी नहीं है, इसीलिये उसके निर्विकल्प, अतीन्द्रिय, अनुपम, बाधारहित और अखंड सुख उत्पन्न होता है। ऐसा सुख संसार में नहीं है; संसार में तो दुःख ही है। अज्ञानी जीव इस दुःख में भी सुख का अनुमान करते हैं, किंतु वह सच्चा सुख नहीं है।

'मैं कैसा हूँ' मैं ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण हूँ और उन गुणों से एकमय हुआ अनंत गुणों की खान बन गया हूँ।

'मेरा चैतन्यस्वरूप कैसा है ?' सर्वांग में चैतन्य ही चैतन्य उसीप्रकार व्याप्त है, जिसप्रकार नमक की डली (टुकड़े में) में सर्वत्र क्षाररस है या जिसप्रकार शक्कर की डली में सर्वत्र अमृत व्याप्य व्यापक हो रहा है। वह शक्कर की डली पूर्णतः अमृतमय पिंड ही है, वैसे ही मैं एक ज्ञानमय पिंड बना हुआ हूँ। मेरे सर्वांग में ज्ञान ही ज्ञान है। जितना-जितना शरीर का आकार है, उतना-उतना ही आकार के निमित्त मेरा आकार है किंतु अवगाहनशक्ति द्वारा मेरा इतना बड़ा आकार इतने से आकार में समा जाता है। एक प्रदेश में असंख्यात-असंख्यात प्रदेश

भिन्न रहते हैं। इनमें संकोच-विस्तार की शक्ति है, ऐसा सर्वज्ञदेव ने देखा है।

मेरा निजस्वरूप कैसा है ? वह अनंत आत्मीक सुख का भोक्ता है तथा एक सुख की ही मूर्ति है, वह चैतन्यमय पुरुषाकार है। जैसे मिट्टी के साँचो में एक शुद्ध चाँदी की प्रतिमा बनाई जाए, वैसे ही इस शरीर के सांचे में आत्मा को जानना चाहिए। मिट्टी का साँचा समय पाकर गल जाता है, जल जाता है, टूट जाता है किंतु चाँदी की प्रतिमा ज्यों की त्यों बनी रहे, वह अवारणरहित होकर सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो जाये। साँचो के नाश होने से प्रतिमा का नाश नहीं होता है। वस्तु पहले से ही दो थीं। इसलिए एक के नाश होने से दूसरे का नाश कैसे हो ? यह तो सर्वमान्य नियम है। वैसे ही समय पाकर शरीर नष्ट होता है तो होओ, मेरे स्वभाव का तो नाश होता नहीं, मैं किस बात का सोच करूँ ?

चैतन्यरूप कैसा है ? वह आकाश के समान निर्मल है, आकाश में किसी प्रकार का विकार नहीं है। वह बिल्कुल स्वच्छ निर्मल है। यदि कोई आकाश को तलवार से तोड़ना, काटना चाहे या अग्नि से जलाना चाहे या पानी से गलाना चाहे तो वह आकाश कैसे तोड़ा, काटा जावे या जले या गले ? उसका बिल्कुल नाश नहीं हो सकता। यदि कोई आकाश को पकड़ना या तोड़ना चाहे तो वह पकड़ा या तोड़ा नहीं जा सकता। वैसे ही मैं आकाश की तरह अमूर्तिक, निर्विकार, पूर्ण निर्मलता का पिंड हूँ। मेरा नाश किसप्रकार हो ? किसी भी प्रकार नहीं हो, यह नियम है। यदि आकाश का नाश हो तो मेरा भी हो, ऐसा जानना। किन्तु आकाश के और मेरे स्वभाव में इतना विशेष अंतर है कि आकाश तो जड़ अमूर्तिक पदार्थ है और मैं चैतन्य अमूर्तिक पदार्थ हूँ। मैं चैतन्य हूँ, इसीलिये ऐसा विचार करता हूँ कि आकाश जड़ है और मैं चैतन्य। मेरे द्वारा जानना प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और आकाश नहीं जानता है।

'मैं कैसा हूँ' मैं दर्पण की तरह स्वच्छ शक्ति का ही पिंड हूँ। दर्पण की स्वच्छ शक्ति में घट-पटादि पदार्थ स्वयमेव ही झलकते हैं। दर्पण में स्वच्छशक्ति व्याप्त रहती है, वैसे ही मैं स्वच्छ शक्तिमय हूँ। मेरी स्वच्छशक्ति में (कर्मरहित अवस्था में) समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव ही झलकते हैं। ऐसी स्वच्छशक्ति मेरे स्वभाव में विद्यमान है। मेरे सर्वांग में एक स्वच्छता भरी हुई है, मानों ये ज्ञेय पदार्थ भिन्न हैं। यह स्वच्छताशक्ति का स्वभाव ही है कि उसमें अन्य पदार्थों का दर्शन होता है।

'मैं कैसा हूँ ?' मैं अत्यंत अतिशय निर्मल, साक्षात् प्रकट ज्ञान का पुंज बना हुआ हूँ और

अनंत शांतिरस से परिपूर्ण हूँ और एक अभेद निराकुलता से व्याप्त हूँ।

मेरा चैतन्यस्वरूप कैसा है ? वह अपनी अनंत महिमा से युक्त है, वह किसी की सहायता नहीं चाहता है, वह असहाय स्वभाव को धारण किए हुए है। वह स्वयंभू है, वह एक अखंड ज्ञानमूर्ति, परद्रव्य से भिन्न, शाश्वत, अविनाशी और परमदेव है और इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट देव किसे मानें ? यदि त्रिकाल में कोई हो तो माने ? नहीं है।

यह ज्ञानस्वरूप कैसा है ? वह अपने स्वभाव को छोड़कर अन्यरूप नहीं परिणमता है। वह अपने स्वभाव की मर्यादा उसीप्रकार नहीं छोड़ता, जिसप्रकार जल से परिपूर्ण समुद्र सीमा को छोड़कर अन्यत्र गमन नहीं करता। समुद्र अपनी लहरों की सीमा में भ्रमण करता है। उसीप्रकार ज्ञानरूपी समुद्र अपनी शुद्धपरिणतिरूप तरंगावलियुक्त अपने सहज स्वभाव में भ्रमण करता है। ऐसी अद्भुत महिमायुक्त मेरा ज्ञानस्वरूप परमदेव, अनादि काल से इस शरीर से भिन्न है।

मेरे और इस शरीर के पड़ोसी के समान संयोग है। मेरा स्वभाव अन्य प्रकार का है और इसका स्वभाव अन्य प्रकार का है। मेरा परिणमन और इसका परिणमन भिन्न प्रकार का है। इसलिए यदि वह शरीर अभी गलनरूप परिणमता है तो मैं किस बात का शोक करूँ। और किस का दु:ख करूँ ? मैं तो तमासगीर पड़ोसी की तरह इसका गलन देख रहा हूँ। मेरे इस शरीर से राग–द्वेष नहीं है। राग–द्वेष इस जगत में निंद्य समझे जाते हैं और ये परलोक में भी दुखदाई हैं। ये राग–द्वेष मोह ही से उत्पन्न होते हैं। जिसके मोह नष्ट हो गया, उसके राग–द्वेष नष्ट हो गये। मोह के द्वारा ही परद्रव्य में अहंकार और ममकार उत्पन्न होते हैं। यह द्रव्य है, सो मैं हूँ— ऐसा भाव तो अहंकार है और यह द्रव्य मेरा है, ऐसा भाव ममकार है। पर सामग्री चाहने पर मिलती नहीं और छोड़ी जाती नहीं, तब यह आत्मा खेद खिन्न होता है। यदि सर्व सामग्री को दूसरों की जाने तो इसके (सामग्री) आने और जाने का विकल्प क्यों उत्पन्न हो ? मेरे तो मोह पहले ही नष्ट हो गया है और मैंने शरीरादिक सामग्री को पहले ही पराई जान ली है, इसलिए अब इस शरीर के जाने से किस बात का विकल्प उठे ? कदाचित् नहीं उठे। मैंने विकल्प उत्पन्न करानेवाले व्यक्ति का (मोहवत्) पहले ही भलीभाँति नाश कर दिया, इसलिए मैं निर्विकल्प आनंदमय निज स्वरूप को बारबार सम्हालता एवं याद करता हुआ अपने स्वभाव में स्थित हूँ।

कोई सम्यग्दृष्टि को इस प्रकार समझाता है 'यह शरीर तो तुम्हारा नहीं है किंतु इस

शरीर के निमित्त से मनुष्य पर्याय में शुद्धोपयोग साधन भली प्रकार होता था, उसका उपकार जानकर इसे रखने का उद्यम करना उचित है। इसमें हानि नहीं है।' उसको सम्यग्दृष्टि उत्तर देता है—'हे भाई! तुमने यह बात कही, सो तो हम भी जानते हैं। मनुष्य पर्याय में शुद्धोपयोग का साधक, ज्ञानाभ्यास का साधन, और ज्ञान-वैराग्य की वृद्धि आदि अनेक गुणों की प्राप्ति होती है, जो कि अन्य पर्याय में दुर्लभ है किंतु अपने संयमादि गुण रहते हुए शरीर रहे तो रहो, वह तो ठीक ही है; हमारे से कोई वैर तो है नहीं और यदि शरीर न रहे तो अपने संयमादि गुण निर्विघ्नरूप से रखना और शरीर से ममत्व छोड़ना चाहिये। हमें शरीर के लिए संयमादि गुण कदाचित् भी नहीं खोने हैं।

जैसे कोई रत्नों का लोभी पुरुष परपदेश में रत्नद्वीप में फूस की झोपड़ी में रत्न ला लाकर इकट्ठा करता है। यदि उस झोपड़ी में अग्नि लग जावे तो वह विचक्षण पुरुष ऐसा विचार करे कि किसी प्रकार इस अग्नि का निवारण करना चाहिये, रत्नोंसहित इस झोपड़ी को बचाना चाहिए। यह झोपड़ी रहेगी तो इसके सहारे बहुत रत्न और इकट्ठे कर लूँगा। इसप्रकार वह पुरुष अग्नि को बुझती हुई जाने तो रत्न रखकर उसे बुझावे और वह यदि यह समझे कि रत्न जाने से झोपड़ी रहे तो वह कदाचित् झोपड़ी रखने का उपाय नहीं करता। उस अवस्था में वह झोपड़ी को जलने दे और आप सम्पूर्ण रत्नों को लेकर अपने देश आ जावे। तत्पश्चात् वह एक दो रत्न बेचकर अनेक तरह की विभूति भोगता है और अनेक प्रकार के स्वर्ण के महल, मकानात व बागादिक बनाता है और राग-रंग, सुगंध आदि से युक्त क्रीड़ा करता हुआ अत्यन्त सुख भोगता है।

रत्नों के लोभी उक्त पुरुष की तरह भेदविज्ञानी पुरुष है। वह शरीर के लिये संयमादि गुणों में अतिचार नहीं लगाता और ऐसा विचार करता है कि 'संयमादि गुण रहेंगे तो मैं विदेहक्षेत्र में देव बनकर जाऊंगा और सीमंधरस्वामी आदि बीस तीर्थंकरों और अनेक केवलियों एवं मुनियों के दर्शन करूँगा और अनेक जन्मों के संचित पाप नष्ट करूँगा और मनुष्य पर्याय में अनेक प्रकार के संयम धारण करूँगा। मैं श्री तीर्थंकर केवली भगवान के चरण कमलों में क्षायक सम्यक्त्व की साधना करूँगा और अनेक प्रकार के मनवांछित प्रश्न कर तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप जानूँगा। राग-द्वेष संसार के कारण हैं, मैं उनका शीघ्रतापूर्वक आमूल नाश करूँगा। मैं श्री परम दयाल, आनंदमय केवल लक्ष्मी संयुक्त श्री जिनेन्द्र भगवान की छवि का

दर्शनरूपी अमृत का निरंतर लाभ लेऊँगा। तत्पश्चात् मैं शुद्धाचरण द्वारा कर्म-कलंक को धोने का प्रयत्न करूँगा। मैं पवित्र होकर श्री तीर्थंकरदेव के निकट दीक्षा धारण करूँगा। तत्पश्चात् मैं नाना प्रकार के दुर्द्धर तपश्चरण करूँगा और तत्परिणामस्वरूप मेरा शुद्धोपयोग अत्यंत निर्मल होगा और मैं अपने स्वरूप में लीन होऊँगा। मैं उसके बाद क्षपक श्रेणी के सन्मुख होऊँगा और कर्मरूपी शत्रुओं से युद्ध कर जन्म-जन्म के कर्मों का उन्मूलन करूँगा और केवलज्ञान प्रगट करूँगा और मुझे एक समय में समस्त लोकालोक के त्रिकालीन चराचर पदार्थ दृष्टिगोचर हो जायेंगे। तत्पश्चात् मेरा यह स्वभाव शाश्वत रहेगा। मैं ऐसी केवलज्ञान लक्ष्मी का स्वामी हूँ, तब इस शरीर से कैसे ममत्व करूँ ?, ऐसा उत्तर देकर सम्यग्ज्ञानी पुरुष विचार करता है

मेरे दोनों ही तरह आनंद है-शरीर रहेगा तो फिर शुद्धोपयोग की आराधना करूँगा और शरीर नहीं रहेगा तो परलोक में जाकर शुद्धोपयोग की आराधना करूँगा। इसप्रकार दोनों ही स्थिति में मेरे शुद्धोपयोग के सेवन में कोई विघ्न नहीं दिखता है। इसलिए मेरे परिणामों में संक्लेश क्यों उत्पन्न हो ?

'मेरे परिणामों में शुद्ध स्वरूप से अत्यंत आसक्ति है। उस आसक्ति को छुड़ाने में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र आदि कोई भी समर्थ नहीं हैं। इस आसक्ति को छुड़ाने में केवल मोहकर्म ही समर्थ है, जिसे मैंने पहले ही जीत लिया। इसलिए अब तीन लोक में मेरा कोई शत्रु नहीं रहा और शत्रुओं बिना त्रिकाल त्रिलोक में दु:ख नहीं है। इसलिए मरण से मुझे भय कैसे हो ? इस प्रकार मैं आज पूर्णत: निर्मल हुआ हूँ। यह बात अच्छी तरह जाननी चाहिए, इसमें कुछ संदेह नहीं है।'

शुद्धोपयोगी पुरुष इसप्रकार शरीर की स्थिति से पूर्णत: परिचित है और ऐसा विचार करने से उसके किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं होती है। आकुलता ही संसार का बीज है। इस आकुलता से ही संसार की स्थिति एवं वृद्धि होती है। अनेक काल से किए हुए संयमादि गुण आकुलता से इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिसप्रकार अग्नि में रुई नष्ट हो जाती है।

सम्यग्दृष्टि पुरुष को किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं करनी चाहिये और वस्तुत: एक निज स्वरूप का ही बारबार विचा करना चाहिये, उसी को देखना चाहिये और उसी के गुणों का संस्मरण, चिंतवन निरन्तर करना चाहिये ! उसी में स्थित रहना चाहिये और कदाचित् शुद्ध स्वरूप से चित्त चलायमान हो तो ऐसा विचार करना चाहिये, यह संसार अनित्य है। इस

संसार में कुछ भी सार नहीं है। यदि इसमें कुछ सार होता तीर्थंकर देव इसे क्यों छोड़ते ?

'इसलिए निश्चयतः मुझे मेरा स्वरूप ही शरण है और बाह्यतः पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी और रतनत्रय धर्म शरण है और मुझे इनके अतिरिक्त स्वप्न के भी और कोई वस्तु शरण नहीं, ऐसा मैंने नियम लिया है।' (क्रमशः)

सच्चा पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता

जीव अंतर के सच्चे अभ्यास द्वारा प्रयत्न करे तो उत्कृष्ट छह महीने में अवश्य आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन हो जाये—यह सुनकर एक व्यक्ति ने पूछा कि हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं परंतु सम्यग्दर्शन नहीं होता ?

उत्तर में गुरुदेव ने कहा कि अरे भाई! ऐसा नहीं हो सकता कि सम्यक्त्व के हेतु सच्चा पुरुषार्थ करे और सम्यक्त्व न हो। कारण के अनुसार कार्य होता ही है—ऐसी कारण-कार्य की संधि है। कार्य प्रगट नहीं होता तो ऐसा मान कि तेरे कारण में ही कहीं भूल है। तेरा पुरुषार्थ कहीं राग की रुचि में रुका है। यदि स्वभाव की ओर के पुरुषार्थ की धारा प्रारम्भ हो तो अंतर्मुहूर्त में अवश्य निर्विकल्प अनुभवसहित सम्यग्दर्शन हो।

स्वभाव का प्रयत्न न करके राग का प्रयत्न करे और कहे कि हम बहुत प्रयत्न करते हैं, तथापि सम्यक्त्व नहीं होता, तो उसे कारण-कार्य के मेल की खबर नहीं है। कारण दे राग का और कार्य माँगे वीतराग स्वभाव का तो कहाँ से मिलेगा ? प्रयत्न करे पराश्रय का और कार्य चाहे स्वाश्रय स्वभाव का, यह कैसे बने ? भाई, यदि तू सम्यक्त्व के योग्य कारण दे तो सम्यग्दर्शनरूप कार्य अवश्य प्रगट होगा। इसके बिना अन्य लाखों कारणों का चाहे जितने काल तक सेवन करता रहे, तथापि उनसे सम्यक्त्वरूपी कार्य प्रगट नहीं हो सकता। इसलिये सम्यक्त्व के सच्चे पुरुषार्थ को समझ और यथार्थ कारण-कार्य का मेल समझकर पुरुषार्थ कर तो तेरा कार्य प्रगट हो। सच्चा पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता।

राजुल का वैराग्य

[यादवकुल के योगी नेमिकुमार विवाह के समय वैराग्य प्राप्त करके जब रथ मोड़कर गिरनार चले जाते हैं और जूनागढ़ के राजभवन में हाहाकार मच जाता है, उस समय राजुल की क्या दशा हुई होगी? क्या वह भी माता–पिता पारिवारिक जनों के साथ आक्रंद कर रही थी? ....नहीं–नहीं; वह तो वीरांगना थी। यदि नेमिकुमार का हृदय वैराग्य से ओतप्रोत था तो उसके हृदय में भी जैनधर्म के पवित्र अंकुर पड़े हुए थे... उसने भी संयम का मार्ग अंगीकार करने का दृढ़ निश्चय किया। उस अवसर पर अपने पिता के साथ राजुल का जो संवाद हुआ, वह गीत के रूप में यहाँ दिया जा रहा है। पिता–पुत्री का यह संवाद अजमेर की भजनमंडली के प्रसिद्ध गायक स्व० भाई श्री शांतिलाल के मधुर कण्ठ से सुनकर श्रोतागण वैराग्य की धारा में डूब जाते थे... आज भाई शांतिलालजी हमारे बीच नहीं हैं परंतु यह संवाद उनका स्मरण कराता है...]

(राग : भिक्षा देदे मैया पिंगला)

राजुल : जोग धरूँगी बाबुल हठ तजो....
झूठा है संसार... बाबुल हठ तजो...

पिता : जोग बिसारो बेटी... राजमती...
मत जाओ गिरनार... बेटी राजमती...

राजुल : ये संसार असार है बाबुल...
मोह जाल दुःखभार... बाबुल हठ तजो...

पिता : और ढुँढाऊँ वर अति सुंदर...
धन वैभव बलकार... बेटी राजमती....

राजुल : पति सती के एक ही होता....
और पिता सुत भ्रात... बाबुल हठ तजो...

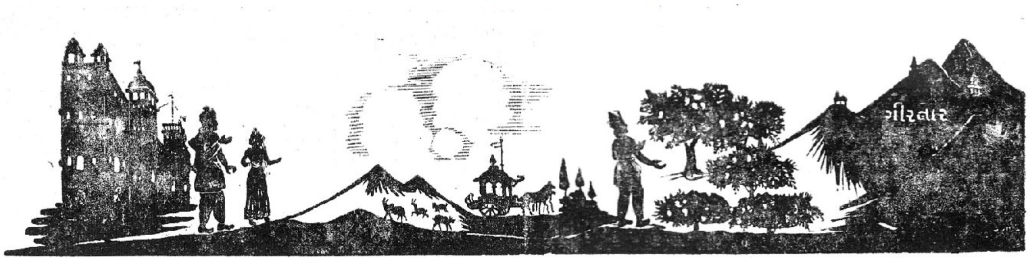

पिता : जब लग सात फिरे नहिं फेरे...
तब लग कुँवारी मान... बेटी राजमती...

राजुल : ये सब थोथी बातें बाबुल...
कुल मरयाद विचार... बाबुल हठ तजो...

पिता : जीवन में सुख भोग भोग क्यों...
दे रही मूढ़ विसार... बेटी राजमती...

राजुल : भोग रोग का घर है बाबुल....
भोग नरक का द्वार... बाबुल हठ तजो...

पिता : ये यौवन ये रूप संपदा...
मिले न बारम्बार... बेटी राजमती...

राजुल : हाड़ माँस पर चाम चमक है...
क्षण में विनसनहार... बाबुल हठ तजो...

पिता : क्या यही है धर्म सुता का...
करे पिता से रार... बेटी राजमती....

राजुल : रार नहीं है धर्म सती का...
हितकर धर्म चितार... बाबुल हठ तजो...

पिता : कठिन जोग तप त्याग है बेटी...
फिर से सोच विचार... बेटी राजमती...

राजुल : धन 'सौभाग्य' मिला संयम का...
सफल करूँ पर्याय... बाबुल हठ तजो...

पिता : धन्य है तेरी दृढ़ता बेटी...
जाओ खुशी गिरनार... देवी राजमती...

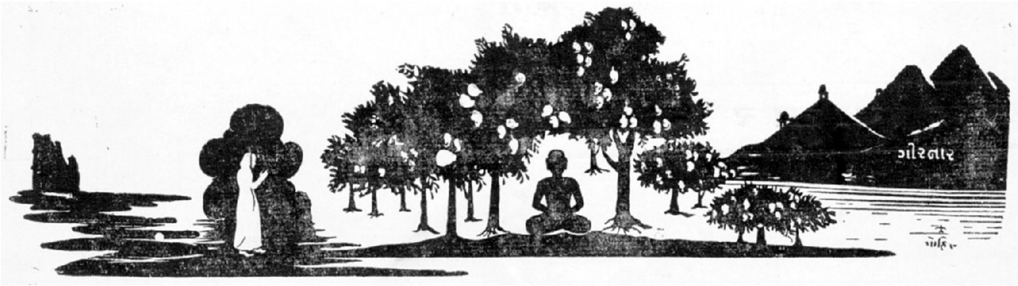

卐 स्वस्तिक 卐

ज्ञान वैराग्य परिणत सत्पुरुष जगत 卐 में जयवंत वर्तो!

ज्ञान दातार महा उपकारी सत्पुरुषों को भक्ति से बारंबार नमस्कार हो!

सत्पुरुष के दर्शन
वैराग्य जागृत
करते हैं ।

सत्पुरुष के वचन
बारम्बार
विचारना चाहिये ।

सत्पुरुष के दर्शन
भक्ति सहित
करना चाहिये ।

सत्पुरुष के वचन
आत्मा को जागृत
करते हैं ।

निज अंतःतत्त्व, कारणपरमात्मा की भावना

(अध्यात्म रसोत्सव)

केवल करुणा निधान, अनुपम ज्योति महान ज्ञायक भानुं,
पूरण चैतन प्रकाश, अगनित शोभा अमाप, मंगल मानुं;
करता शिव सुखराश, हरता तम मोहपास साधक केरा;
भक्तों के प्राण, महा सुखिया सुजान, करो श्रेय हमारा।।के०॥
चितशक्ति के पुंज, वीतरागी जिनेन्द्र, करूँ निश्चय भक्ति,
ग्रही जिनवर का मार्ग, पाय सच्चा विश्राम, मिटे दुविधा मन की;
तत्त्व महिमा में संत, करे केलि अनंत, दिव्य समता प्रगटी,
शांत सागर गम्भीर, पुनीत महिमा मंदिर, मोह-मूर्छा विघटी॥
नित्य नवल तरंग, गीत गातें अभंग, नित्य उत्सव छाजे,
अहो!! तात्त्विक आनंदकंद, चिद्घन ज्योति अमंद त्रिभुवनराजे;
कृतकृत्य मंगल महान, निर्मल बोधि निधान, मुक्ति दीजे;
धरि समरस विश्राम, सतत् ध्यावुं गुणधाम, नाथ सिद्धि दीजे॥
उत्तम सार्थक सुकान, तीरथ कर्ता महान, शिवपद दीजे,
मुझ अक्षय गुणधाम, महासुखकर विश्राम, सत्य जीवन दीजे;
पूर्ण ज्ञायक परमेश, पतित पावन जिनेश, भव्य जन के त्राता,
अहो!! समता भण्डार-नित्ययोग-क्षेमकार, महामंगलदाता॥
परमारथ पंथ एक, सुंदर रसरंग टेक, भविजन गाता,
पाता शिवसंग ठेठ, छोड़ी दुविधा विशेष, आतम ध्याता,
रत्नत्रय में महंत, शुद्ध साधक शोभंत, साथ लघुता, मृदुता,
पाय चैतन विलास, धार अद्भुत विकास, परम प्रभुता पाता॥
तत्त्व भक्ति का ठाट, सहज मस्ती विराट, स्वच्छ सागर उछले,
ज्ञान शक्ति अमाप, धार चैतन्य प्रताप, सत्य ज्ञप्ति विरचे,
करी समता विस्तार, ध्रुव तारक जिनराज, ज्योति अनुपम छाजे,

शुक्ल श्रेणि की मौज, हनन मोह शत्रु फौज, सरस गुप्ति राजे॥
सूक्ष्म लोभ तजि संत, महा निर्जरा लहंत, ज्ञान कैवल धारी,
धन्य... महिमा अनंत, तीर्थकर्ता भगवंत, हरो पीर हमारी,
कही वस्तु स्वतंत्र, लही दृष्टि निःशंक, भवि हर्षे उछले,
करुँ अंतर विश्राम, वही वस्तु महान, सत्य समता चमके॥
जिनगुण सम्पत्ति महान, होय बोधि निधान, एक मुक्ति काजे
सम्यक्गुण गण अनंत, शोभत श्रीमत् जिनेन्द्र, धन धन्य आजे॥

—ब्र० गुलाबचंद जैन

जैन शासन की राजधानी

आपने सोनगढ़ का चित्र देखा?—यह है अध्यात्म धाम सोनगढ़—कितना शांत! कितना भव्य! और कितना रमणीय! जिसे देखते ही दुनियावी वातावरण घड़ी भर भूल जाये—ऐसा यह अध्यात्मधाम गुरु कहान के प्रताप से सुशोभित हो रहा है। यहाँ से परमोपकारी स्वामीजी के प्रताप से भारतभर में जैनधर्म के आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान का जो प्रचार हो रहा है, उसके कारण आज सोनगढ़ जगप्रसिद्ध बन गया है, और तत्त्वज्ञानरसिक मुमुक्षुओं की आँखें उसके ऊपर गड़ी हुई हैं। आज सोनगढ़ बना है—जैन शासन की राजधानी।

तीर्थधाम सोनगढ़ में मनाए जानेवाले धार्मिक महोत्सवों को अपनी नजरों से देखनेवाले को ऐसा लगता है कि यहाँ तो धर्म का चौथा काल चल रहा है। अति उन्नत जिनमंदिर में विराजमान मूलनायक भगवान् सीमंधरनाथ की उपशान्तरस भरपूर वीतराग मुद्रा देखते ही मुमुक्षु का हृदय स्थिर हो जाता है... इसमें जब वीतरागी जिनभक्ति की धुन पूज्य बहनश्री गवाती हैं, उस वक्त तो मानों परम पवित्र देहातीत भाव और समवशरण मूर्तिमान हो गए हों,

ऐसा लगता है। पास ही में सीमंधर नाथ का समवसरा है-जहाँ कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रभु के ओंकारनाद को झेल रहे हैं, यह पवित्र दृश्य दिखलाई देता है।

दूसरी ओर है—जैन स्वाध्यायमंदिर, यह है अध्यात्ममूर्ति स्वामीजी की साधना भूमि। वहाँ से दिन-रात वे जैन शासन का वीतरागी संदेश विश्व को सुना रहे हैं, उसमें समयसार की प्रतिष्ठा हुई है। यह 'प्रतिष्ठा मंदिर' देखते ही ऐसा विचार में आता है कि संपूर्ण भारत में श्री समयसार परमागम की सर्वोत्कृष्ट भक्ति और उन आचार्यों को बहु सम्मान यदि कहीं मिला है तो वह यहाँ ही मिला है। और जब समयसार के ऊपर हम सत्य धर्म के जिज्ञासु बनकर स्वामीजी के प्रवचन सुनते हैं, उस समय ऐसा विचार आता है कि समयसार में भरे अति गंभीर अध्यात्म ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट रीति से वर्तमान में समझने का स्थान सोनगढ़ ही है। दूसरी ओर देखें—पाँच हजार चौरस फीट का 'कुन्दकुन्द प्रवचन मंडप'। यह कुन्दकुन्दस्वामी के धर्मध्वज को फहराता हुआ (मानों) कुन्द-संदेश सुनाने के लिये जगत को निमंत्रित कर रहा हो—इसके अंदर जिनवाणी का सरस्वती भंडार भी है। पूर्व दिशा में मंडप के ऊपर भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की सौम्यमूर्ति है।

और दूर-दूर से जिसका दर्शन मुमुक्षुओं को आनंद दे रहा है—ऐसा यह उत्तुंग (ऊँचा) मानस्तंभ तो देखो! वाह! जैनशासन की राजधानी का यह धर्मध्वज है; सुवर्णधाम की यह शोभा है। समीप ही, इस धर्मध्वज की छाया में ब्रह्मचर्याश्रम सुशोभित हो रहा है, जिसमें पूज्य बेनश्री-बेन जैसी शांत-वैरागी धर्मात्माओं की छाया में अनेक ब्रह्मचारी बहिनें आत्मसाधना के प्रयत्न में जीवन सफल कर रही हैं।

ऐसी इस राजधानी में सवेरे से पहले ही अधिक रात तक तत्त्वज्ञान की उत्तम धार्मिक प्रवृत्ति चलती रहती है... अध्यात्मप्रेमी मुमुक्षुओं का यह तीर्थधाम है।

जीव के पाँच भावों का परिचय

जीव के पाँच मुख्य भाव हैं और अपने उपशमादि सर्व भावों का कर्ता जीव स्वयं ही है। पुद्‌गलकर्म की उदयादि सर्व अवस्थाओं का कर्ता वह पुद्‌गल कर्म ही स्वयं है। जीव के पाँच भावों संबंधी सुंदर विवेचन प्रवचन में आया था; जिन विविध प्रकारों को जानने से जिज्ञासुओं को ज्ञान का उल्लास होता है। उन पाँच भावों का परिचय उपयोगी होने से—यहाँ तत्संबंधी १०० प्रश्न दिये गये हैं। इस अंक में मात्र प्रश्न ही दिये जा रहे हैं; उनका उत्तर अगले अंक में दिया जाएगा, ताकि जिज्ञासु पाठकों को स्वयं विचारने का अवकाश रहे।

(१) जीव के मुख्य पाँच भाव हैं, वे कौन–कौन ?

(२) चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक होता है, वह कौनसा भाव ?

(३) चौथे से ११वें गुणस्थान तक होता है, वह कौनसा भाव ?

(४) पहले से १४ वें गुणस्थान तक होता है, वह कौनसा भाव ?

(५) पहले से १२वें गुणस्थान तक होता है, वह कौनसा भाव ?

(६) संसारी और सिद्ध सबमें होता है, वह कौनसा भाव ?

(७) सिद्ध में नहीं होता, वह कौनसा भाव ?

(८) संसारी में नहीं होता, वह कौनसा भाव ?

(९) सब संसारी जीवों में होता है, वह कौनसा भाव ?

(१०) संसार में सबसे अधिक जीवों को होता है, वह कौनसा भाव ?

(११) संसार में सबसे कम जीवों को होता है, वह कौनसा भाव ?

(१२) सब छद्मस्थ जीवों को होता है, वह कौनसा भाव ?

(१३) ज्ञानपर्याय में लागू नहीं पड़ता, वह कौनसा भाव ?

(१४) धर्म का प्रारम्भ होता है, तब कौनसे भाव होते हैं ?

(१५) देवगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

(१६) मनुष्यगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

(१७) नरकगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

(१८) तिर्यंचगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

(१९) श्रद्धा का क्षायिक भाव कौन से गुणस्थान में होता है ?

(२०) ज्ञान का क्षायिक भाव कौन से गुणस्थान में होता है ?

(२१) चारित्र का क्षायिक भाव कौन से गुणस्थान में होता है ?

(२२) पाँच में से सबसे कम भाव कौन से जीव के होते हैं ?

(२३) एक साथ पाँचों भाव कौन से जीव को लागू पड़ते हैं ?

(२४) पन्द्रहवाँ स्थान कौन सा ?

(२५) उपशम सम्यक्त्वी को क्षपक श्रेणी होती है ?

(२६) क्षायिक सम्यक्त्वी को उपशम श्रेणी होती है ?

(२७) क्षपक श्रेणीवाला जीव स्वर्ग में जाता है ?

(२८) उपशम श्रेणीवाला जीव स्वर्ग में जाता है ?

(२९) मन:पर्ययज्ञान कौनसा भाव है ?

(३०) केवलज्ञान कौनसा भाव है ?

(३१) सम्यग्दर्शन कौनसा भाव है ?

(३२) वीतरागता कौनसा भाव है ?

(३३) वर्तमान में भरतक्षेत्र के जीव को कौन–कौनसे भाव हो सकते हैं ?

(३४) आठ कर्मों में से उदय कितने में होता है ?

(३५) आठ कर्मों में से क्षय कितने में होता है ?

(३६) आठ कर्मों में से उपशम कितनों का होता है ?

(३७) आठ कर्मों में से क्षयोपशम कितनों का होता है ?

(३८) जीव में अनादि–अनंत कौनसा भाव है ?

(३९) सादि–सानंत कौनसा भाव है ?

(४०) अनादि–अनंत कौनसा भाव है ?

(४१) सादि–सांत कौनसा भाव है ?

(४२) जो जीव धर्मी न हो, उसे कितने भाव होते हैं ?

(४३) धर्मात्मा को कितने भाव होते हैं ?

[१] उन्हें जघन्य हों तो कितने ?

[२] सिद्ध भगवान को कितने ?

(४४) श्री कुन्दकुन्दाचार्य के जीव को आज कितने भाव होंगे ?

(४५) भरतक्षेत्र के धर्मात्मा को वर्तमान में कौन से भाव होंगे ?

(४६) विदेहक्षेत्र के धर्मात्मा को कौनसे भाव होंगे ?

(४७) १४वें गुणस्थान में कौनसे भाव होते हैं ?

(४८) १३वें गुणस्थान में कौनसे भाव होते हैं ?

(४९) १२वें गुणस्थान में कौनसे भाव होते हैं ?

(५०) ११वें गुणस्थान में कौनसे भाव होते हैं ?

(५१) पहले गुणस्थान में हो और १४वें गुणस्थान में न हो, वह कौनसा भाव है ?

(५२) पहले गुणस्थान में हो और १४वें गुणस्थान में भी हो, वह कौनसा भाव है ?

(५३) पहले गुणस्थान में न हो और १४वें गुणस्थान में भी न हो, वह कौनसा भाव है ?

(५४) संसार अवस्था में सदैव रहनेवाला भाग कौनसा है ?

(५५) आने पर कभी न जाये, वह कौनसा भाव है ?

(५६) ज्ञान का क्षायिकभाव कौनसी गति में होता है ?

(५७) श्रद्धा का क्षायिकभाव कौनसी गति में होता है ?

(५८) चारित्र का क्षायिकभाव कौनसी गति में होता है ?

(५९) श्रद्धा का क्षयोपशमभाव कौनसी गति में होता है ?

(६०) ज्ञान का क्षयोपशम भाव कौनसी गति में होता है ?

(६१) ज्ञान का क्षयोपशम न हो, ऐसा कब बनता है ?

(६२) एक बार नष्ट होने पर पुनः आ सके—वह कौनसा भाव है ?

(६३) एक बार नष्ट होने पर फिर कभी न आ सकें, ऐसे दो भाव कौन से हैं ?

(६४) राग कौनसा भाव है ?

(६५) मतिज्ञान कौनसा भाव है ?

(६६) मोक्ष कौनसा भाव है ?

(६७) मतिज्ञानावरण का सम्पूर्ण क्षय हो, तब कौन सा ज्ञान प्रगट होता है ?
(६८) उपशमभाव के कितने प्रकार हैं ?
(६९) क्षायिकभाव के कितने प्रकार हैं ?
(७०) क्षयोपशमभाव के कितने प्रकार हैं ?
(७१) उदयभाव के कितने प्रकार हैं ?
(७२) उदयभाव के साथ होता ही है – ऐसा कौनसा भाव है ?
(७३) चौथे गुणस्थान के पहले न हो, वह कौनसा भाव है ?
(७४) ग्यारहवें गुणस्थान पीछे नहीं होते हैं, वे कौन से भाव हैं ?
(७५) बारहवें गुणस्थान के पश्चात न हो, वह कौनसा भाव है ?
(७६) पहले गुणस्थान में हो और १३वें गुणस्थान में न हो—वह कौनसा भाव है ?
(७७) संसारदशा में जीव को कौनसा भाव सबसे कम समय तक रहता है ?
(७८) संसारदशा में जीव को कौनसा भाव सबसे अधिक समय तक रहता है ?
(७९) साधकभाव के कारणरूप भाव कौन से हैं ?
(८०) साधक अवस्था का प्रारम्भ कौनसे भाव से होता है ?
(८१) संसारदशा की पूर्णता कौन से भाव से होती है ?
(८२) संसारदशा में सदा नियम से साथ ही हों—ऐसे दो भाव कौनसे हैं ?
(८३) सीमंधर भगवान को वर्तमान में कौन-कौन से भाव हैं ?
(८४) महावीर भगवान को वर्तमान में कौन-कौन से भाव हैं ?
(८५) सीमंधर भगवान के गणधर को वर्तमान में कौन-कौनसे भाव हो सकते हैं ?
(८६) पाँच भावों में से बन्ध का कारण कौनसा भाव है ?
(८७) पाँच भावों में से मोक्ष का कारण कौनसा भाव है ?
(८८) बन्ध-मोक्षरहित कौनसा भाव है ?
(८९) उदयभाव के गुणस्थान कौन-कौनसे हैं ?
(९०) उपशमभाव के गुणस्थान कौन-कौनसे हैं ?
(९१) क्षयोपशमभाव के गुणस्थान कौन-कौनसे हैं ?
(९२) क्षायिकभाव के गुणस्थान कौन-कौनसे हैं ?

(९३) उपशमभाववाले जीव कितने हैं ?

(९४) संसार में उपशम की अपेक्षा क्षायिकभाववाले जीव कितने हैं ?

(९५) संसार में क्षयोपशम सम्यक्त्वी अधिक हैं या क्षायिक सम्यक्त्वी ?

(९६) सीमंधरनाथ में न हो, और अपने में हो वह कौनसा भाव हैं ?

(९७) सीमंधरनाथ में हो और अपने में वर्तमान न हो, वह कौनसा भाव है ?

(९८) सीमंधरनाथ में हो और अपने में भी हो वह कौनसा भाव है ?

(९९) केवलज्ञान प्राप्त हो, तब कौनसा भाव आत्मा में से कम हो जाता है ?

(१००) एक जीव अरिहन्त में से सिद्ध हुआ, तब कौनसा भाव उसमें से कम हो जाता है ।

(उत्तर के लिये देखिये, अगला अंक)

सोनगढ़ में कथानुयोग

सोनगढ़ के वातावरण में पैर रखते ही मुमुक्षु जीव आध्यात्मिक हवा की किसी अपूर्व ताजगी का अनुभव करता है, और सोनगढ़ के धर्मस्थानों का जीता जागता अध्यात्म का वातावरण दुनियावी वातावरण को घड़ी भर भुला देता है ! वहाँ के प्रवचन मंडप में खड़े हों अथवा स्वाध्याय मंदिर या जिनमंदिर में खड़े हों, उस समय वहाँ की दीवालें भी मानों हमको कथानुयोग सुना रही हों, ऐसा वातावरण उत्पन्न हो जाता है; चारों ओर की दीवालों पर पुराणपुरुषों की आत्मसाधना के भावग्राही दृश्य पुराण को आपके समक्ष उपस्थित कर देते हैं। उनमें अनेक तीर्थंकरों के दृश्य हैं; मुनिवरों के भी अनेक दृश्य हैं, और धर्मात्मा श्रावकों के तथा तीर्थों के भी अनेक दृश्य हैं।

स्तुति

(छात्रालय में खास गाने योग्य)

स्तोता—स्व-पर का ज्ञाता, ऐसा अनुभवी स्तुति कर्ता।
स्तुत्य—सत् प्रशंसा के योग्य, अर्हन्तादि परमेष्ठी, आप्त आदि।
स्तुति—सम्यक् विनय सहित द्रव्य-भाव स्तवन स्तुतिरूप क्रिया।
स्तुति फल—भेदविज्ञान और शुद्धनय द्वारा भूतार्थ आश्रित निर्मलता।

(राग—प्रभाती-कड़रवा)

जय चिदानंद आनंद रूपी जिनं, ज्ञानमय दर्शमय वीर्यमय मल हनं।
राग नहिं द्वेष नहिं क्रोध नहिं मान ना, मोह ना, शोक ना, भाव अज्ञान ना॥१॥
है कपट कोइ ना, लोभ ना, काम ना, पंच इन्द्रियमय संसृति काम ना।
जन्म ना, मर्ण ना, खेद ना, दोष ना, कोइ संताप ना कोइ पर रोष ना॥२॥
कर्म आठों हने शुद्ध आपी भये, आपके आपमें आप जानत भये।
है नहीं वर्ण रस गंध अरु फर्श ना, जड़मई मूर्ति ना जड़मई दर्श ना॥३॥
आप तो ज्ञानमय आप ध्याता बली, आपने सर्व बाधा विषमता दली।
आप ही पूज्य हो, आप ही सिद्ध हो, आपको देखते आप सम रिद्ध हो॥४॥
आदिनाथं तुम्हीं शान्तिनाथं तुम्हीं, नेमिनाथं तुम्हीं पार्श्वनाथं तुम्हीं।
हो महावीर सन्मति परम शिवमई, सुक्ख सागर तुम्हीं, देख समता भई॥५॥

जो जानता अर्हन्त को, द्रव्य गुण पर्यायतत्त्व से।
वह जानता निज तत्त्व अरु, तम मोह लय होता खरे॥

हे जीव! सुख विषयों में नहीं है, सुख आत्मा में है

अरे जीव! बाह्य विषयों के सेवन में तेरा अनंत काल व्यतीत हो गया किंतु फिर भी तुझे सुख की ठंडी हवा नहीं मिली। इसलिए थोड़ा सा विचार... और इधर से पीछे मुड़... एक बार ज्ञानचक्षु से आत्मा की ओर देख... तुझे उसी समय अपूर्व सुख होगा।

हे जीव! तू अपने से भिन्न शरीर-कुटुम्ब आदि को मूढ़ता से अपना मान रहा है और जो अतीन्द्रियसुखयुक्त अपना अभिन्न स्वभाव है, उसे किसी प्रकार जानता नहीं है। पैसा-कुटुम्ब आदि परद्रव्य तुझे सुख नहीं देते हैं और उन्हें अपना मानने से केवल दु:ख ही मिलता है। अरे! तेरा आत्मा अतीन्द्रिय सुखस्वरूप है। इस अतीन्द्रिय सुख से परिपूर्ण आत्मा में परद्रव्य का क्या प्रयोजन? क्या परद्रव्य तुझे शांति देते हैं? अरे! आनंद स्वभाव की प्राप्ति में शरीर किस काम का है? द्रव्य किस काम का है? तू परद्रव्य को अपना मानकर उससे सुख की आशा रखता है, वह मूर्खता है। जब चैतन्य सुख को भूला और लक्ष्मी-शरीर आदि पर में सुख मान लिया, तब वह मूढ़ जीव परपदार्थों की प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के पाप-हिंसा, असत्य, चौरी; काला बजारी आदि करता है। अरे! जीव दु:ख के कारणों को सुख का कारण मानकर भोग रहा है.... विषय दु:ख के ही कारण हैं, फिर भी मूढ़ जीव उसमें सुखबुद्धि से रमण करता है। आत्मस्वभाव का सेवन ही एक सुख है। कोई भी पर के सेवन की वृत्ति उठी, वह दु:ख ही है। जो पर के सेवन में सुख मानता है, वह स्वद्रव्य की तरफ कैसे आवे? पर में सुख की नास्ति है, फिर भी उसमें सुख का अस्तित्व मानना और आत्मा सुखस्वभाव से पूर्ण है, उसकी प्रतीति नहीं करना मूढ़ जीव का लक्षण है।

धर्मात्मा स्वसन्मुख होकर चैतन्य का आनंद देखता है, अनुभव करता है, उसे जगत के किसी परद्रव्य में सुख की कल्पना नहीं होती। वह स्वद्रव्य के अतिरिक्त अन्यत्र उपादेयबुद्धि नहीं रखता। जो परविषयों में सुख मानता है, वह उनके कारणरूप शुभराग में भी सुख माने बिना नहीं रहता। इसप्रकार जो जीव शुभराग को धर्म या उपादेय मानता है, वह जीव राग के फल में भी सुख मानता है, इसलिये राग में सुख मननेवाले (राग को धर्म का साधन माननेवाले) जीव के विषयों की आसक्ति वस्तुत: कभी नहीं मिटती है। जो राग में आसक्त है, वह विषयों में भी आसक्त है। राग और विषय दोनों एक ही जाति के हैं। चैतन्यस्वभाव इन दोनों से भिन्न जाति का

है। जो चैतन्य सुख को जानता है, वह कभी राग या विषयों में लीन नहीं होता।

ज्ञान कला जिसके घट जागी,
ते जगमांहि सहज वैरागी।
ज्ञानी मगन विषय सुख मांथी,
यह विपरीत संभवै नांही।

ज्ञान हो, आत्म–सुख का अनुभव हो और विषयसुखों में मग्नता भी रहे, यह एक–दूसरे से सर्वथा विपरीत है। ज्ञानी के विषय–सुख में मग्नता हो, ऐसा विपरीतपना कभी संभव नहीं है। वह तो जगत में सहज वैरागी है। जब ज्ञान कला प्रकटती है, तब राग और विषयों में अत्यंत उदासीनता हो जाती है। अरे, जो चैतन्य सुख को नहीं जानता, वह विषयों की तृष्णा से अनेक पाप करता है और चार गति के दुःख भोगता है। जो चैतन्य को भूलकर शुभभाव करता हो और उसमें सुख मानता हो, वह भी वस्तुतः विषयों में ही मग्न है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा विषयों से विमुख होकर चैतन्यस्वभाव के सुख का वेदन करता है, सम्यग्दर्शन होते ही विषयसुखों से दृष्टि हटकर जीव के चैतन्यस्वभाव के सुख का अनुभव प्रारम्भ हो जाता है। अंतरात्मा अंतरंग में चैतन्य सुख का स्वाद चखकर बाह्य विषयों से विमुख होता है और बहिरात्मा बाह्य विषयों में सुख मानकर चैतन्यस्वभाव से परांमुख रहता है और केवल दुःख ही भोगता है। भाई! विषय तो पाप हैं, उसमें सुख कैसे मिले? अरे! जिस आत्मा में सुख भरा हुआ है और जहाँ दुःख का लेशमात्र भी नहीं है, ऐसी आत्मा में तू प्रेम क्यों नहीं करता? जिनमें केवल दुख ही है और सुख का अंश भी नहीं है, ऐसे बाह्य विषयों में प्रेम क्यों करता है? अरे जीव! बाह्य विषयों के सेवन में तेरा अनंतानंत काल व्यतीत हो गया, फिर भी तुझे सुख की ठंडी हवा नहीं मिली; इसलिये थोड़ा विचार! ......इससे पीछे मुड़ और ज्ञानचक्षु से विवेक कर! एक बार आत्मा की तरफ देख। आत्मा में सुख है, उसे देख! श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं—

अनंत सुख नाम दुख, त्यां रही न त्रिचता,
अनंत दुख नाम सुख प्रेम त्यां विचित्रता!
उघाड़ न्याय नेत्र को नीहाल रे नीहाल तूँ,
निवृत्ति शीघ्रमेव धारी वे प्रवृत्ति टाल तूँ।

विरागी वरांगकुमार के वैराग्य उद्‌गार

[बाईसवें तीर्थंकर नेमिप्रभु के समय में 'वरांग' नामक राजकुमार हुआ था; राज्याभिषेक, अनेक संकट, महान पुण्योदय, सम्यक्त्वसहित श्रावक व्रतों का ग्रहण, जिनमंदिर महोत्सव, तत्त्वोपदेश आदि अनेक प्रसंगों के बाद एक बार तारा टूटता देखकर वरांगकुमार वैराग्य प्राप्त करता है और श्री वरदत्त केवली के पास दीक्षा लेने जाता है—उस प्रसंग के उसके कतिपर्य वैराग्य के उद्‌गार।] **(जटासिंहनंदि आचार्य कृत वरांग चरित्र में से)**

✤ ✤ ✤

कुटुम्ब कबीला प्रेमीजन मुझे केवल भोजनादि साधारण कार्यों में ही साथ दे सकते हैं, मृत्यु आने पर तो सभी व्यर्थ हैं; उसीप्रकार धर्मकार्य में भी वे साथ नहीं दे सकते—तो इनसे मेरा क्या भला होना है ? उसीप्रकार जब वे अपने कर्मानुसार धक्के खाने लगेंगे, तब मैं भी उन्हें रोकने अथवा बचाने में समर्थ न हूँगा। जीव का सच्चा साथीदार तो वही है, जो धर्ममार्ग में साथ देता है।

जबकि मकान में आग लग गयी हो तो समझदार आदमी बाहर भागने का प्रयत्न करता है, परन्तु यदि कोई शत्रु हो तो वह उसे पकड़कर उसी आग में पुन: फैंक देता है, उसीप्रकार वैरागी वरांग कहता है कि मोह की ज्वाला से भकभक जलता हुआ जो यह संसार है, उस संसार दु:ख की अग्नि ज्वाला से मैं बाहर निकलना चाहता हूँ; इसलिये हे महाराज! (पिताजी!) किसी शत्रु की भाँति आप मुझे फिर से अग्नि ज्वाला में नहीं फैंकना, घर में रहने के लिये न कहना।

इसीप्रकार लहरों से उछलते भीषण समुद्र के बीच में से महान प्रयत्नपूर्वक तैरते-तैरते कोई पुरुष किनारे तक आवे और कोई शत्रु धक्के देकर फिर से समुद्र में उसे धकेले, उसीप्रकार हे पिताजी! दुर्गति के दु:खों से भरे इस घोर संसार समुद्र में अनादि से डूबा हुआ मैं वैराग्य द्वारा इस समय जैसे-तैसे किनारे लगा हूँ तो फिर से आप मुझे इस संसार समुद्र में न फेंको।

कोई मनुष्य शुद्ध-स्वादिष्ट-स्वच्छ अमृत जैसे मिष्ठान्न खाता हो और शत्रु उसमें जहर मिला दे, उसीप्रकार मैं इस समय संसार से अत्यंत विरक्त होकर अपने अंतर में धर्मरूपी परम अमृत का भोजन करने को तत्पर हुआ हूँ; इसी समय राजलक्ष्मी के भोग का विष मिलाकर आप शत्रु कार्य न करना।

अरे ! जो संसार के मात्र पापकार्यों में ही सहायक होता है और पवित्र धर्मकार्यों में विघ्न डालता है, उसके सदृश शत्रु दूसरा कौन है ?

मेरे अंतर में इस समय शुद्धोपयोग की प्रेरणा जगी है, मेरा मन सर्वत: विरक्त हो गया है।

दीक्षा के हेतु तैयार हुआ वरांगराज अपने पुत्रों को अंतिम हित सीख देता हुआ कहता है कि लौकिक योग्यता और सज्जनता के उपरांत भगवान अरहंतदेव द्वारा उपदिष्ट 'रत्नत्रयधर्म' को कभी न भूलना। शास्त्रज्ञ की संगत करना। रत्नत्रय से भूषित सज्जनों का आदर और समागम करना। मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका इस चतुर्विध संघ की जब-जब अवसर मिले, तब आदरपूर्वक वन्दना करना, भक्ति करना... और रत्नत्रय के सेवन में सदा तत्पर रहना।

इसप्रकार वरांगकुमार वैरागी होकर जब वन की तरफ चले, तब उन्हें देखनेवाले कितने ही जीवों ने उनकी प्रशंसा की, और दूसरे जीव कि जिनकी आत्मा मर नहीं गई थी, जिनका आत्मबल दीन नहीं हुआ था, जो आत्महित में जागृत थे, वे तो वरांग के साथ ही चल निकले.... 'यह राजकुमार आत्महित सिद्ध करने को वन में जायेगा और क्या हम हाथ बाँधकर यहीं बैठे रहेंगे ?' ऐसा कहकर वे भी उन्हीं के साथ वैरागी होकर वन में चले गये।

जैसे भयभीत कछुआ अपने सभी अंगों को अपने में ही सिकोड़ लेता है, उसीप्रकार संसार से भयभीत वरांग मुनिराज ने अपना उपयोग समस्त इन्द्रियों से सिकोड़कर अपने में ही एकाग्र किया। जिसका उपयोग अपने में ही लगा है, उसे इस जगत में भय नहीं है।

[वरांग चरित्र ग्रंथ बड़ी रोचक शैली का ग्रंथ है, साथ में तत्त्वज्ञान भी दिया है। भारतीय दिगम्बर जैन संघ-पोस्ट चौरासी-मथुरा (उ०प्र०) से मिलता है।]

जिनमार्ग अत्यंत सरल है

सर्वज्ञ जिनेन्द्रों के मार्ग के अनुसरण करने से जीव का उद्धार होता है, और वह जन्म-मरणरहित अमर पद प्राप्त करता है। और यह कोई कठिन मार्ग नहीं है परंतु स्वाभाविक होने के कारण विवेकी पुरुषों के लिये यह अत्यंत सरल है। हे जीव ! अंतरात्मा के द्वारा इसका ग्रहण कर। तू सन्मार्ग हो।

समयसार

हे समयसार! अपने गूढ़-गम्भीर रहस्यों को मेरे अंतर में परिणमित करके मुझे सहज शांति का पान करा!

[चौदह वर्ष पूर्व की ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी का प्रवचन]

आज समयसार का दिवस है। स्वाध्यायमंदिर में श्री समयसारजी की प्रतिष्ठा को (इस २०२२ की साल में) २८ वर्ष पूर्ण होकर २९वाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। समयसार शास्त्र श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित, अलौकिक, जैनदर्शन के मर्मरूप शास्त्र है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव लगभग संवत ४९ में हुए। वे एक दिगंबर संत थे, छठवें-सातवें गुणस्थान की दशा उनके अंतर में प्रगट हुई थी; वे पंच परमेष्ठियों में सम्मिलित हुए थे। वे भगवान सीमंधर परमात्मा के पास महाविदेह में गये थे। उन्हें भगवान का विरह हुआ... अरे रे! महावीर परमात्मा की उपस्थिति नहीं, साक्षात् तीर्थंकर का योग नहीं... ऐसे समय में सीमंधर भगवान का स्मरण हुआ। उस समय के शासन में वे यहाँ के मुख्य आचार्य थे। एक बार उन्हें तीर्थंकर के विरह का परिताप हुआ और...

अरे रे! सीमंधरनाथ का विरह हुआ इस भरत में...

ऐसे विचारों की श्रेणी में चढ़ते ही महाविदेह में जाने का योग बना। वर्तमान में जो सीमंधर परमात्मा महाविदेह में विराजमान हैं, वे ही उस समय विराजमान थे। वहाँ कुन्दकुन्द प्रभु गये और आठ दिन तक भगवान की वाणी सुनी; और ज्ञान की निर्मलता बढ़ गई। वहाँ आठ दिन रहकर फिर भरतक्षेत्र में पधारे और पश्चात् समयसारादि महान परमागमों की रचना की... साक्षात् आत्मा का अनुभव, प्रत्यक्ष भगवान की भेंट तथा मुनिदशा के चारित्र में झूलते-झूलते उन्होंने इन अलौकिक शास्त्रों की रचना की है। अनंत काल से जो तत्त्व समझना रह गया है, वह इसमें समझाया है। दूसरे बहुत से शास्त्रों में वैसा रहस्य भरा है, परंतु समयसार तो उनमें सर्वोत्कृष्ट है।

अहा! यह समयसार ऐसा अलौकिक सर्वोत्कृष्ट शास्त्र है। आज उसकी प्रतिष्ठा का दिन है। उसके मंगलाचरण में कहते हैं कि—

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे॥

अहा! आत्मा की शांति के पथ पर विचरनेवाले आत्माओं को मंगलमय ऐसा यह श्लोक है। अप्रतिहत भाव से शुद्धात्मा को नमस्कार। आचार्यदेव स्वयं साधक हैं, स्वर्ग में जाकर वहाँ से मनुष्य होकर मुक्ति प्राप्त करना है; उन्होंने यह अप्रतिहत मंगलाचरण किया है।

अहा! चैतन्य के स्वरूप का कैसा वर्णन करते हैं! मैं समयसार को नमस्कार करता हूँ। समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा। जड़कर्म तथा भावकर्म से रहित जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध आत्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। वर्तमान आत्मा का ऐसा शुद्ध स्वरूप है, उसे जानकर उसी का आदर करता हूँ, उसके अतिरिक्त अन्य का आदर नहीं करता। शरीर, जड़कर्म, या संसार से आत्मा रहित है। वर्तमान में भी शुद्धस्वभाव की दृष्टि से आत्मा में शरीर, जड़कर्म या संसार नहीं है। एक समय की पर्याय में जो विकार है, वह त्रैकालिक आत्मा का स्वरूप नहीं है। ऐसे शुद्ध आत्मा को नमस्कार करना—उसकी रुचि, ज्ञान करके उसमें एकाग्र होना, सो मंगलाचरण है। त्रैकालिक चैतन्यस्वरूप को ज्ञान में लेकर एक समय के संसार का अभाव करते हैं और अनादि से जो स्वभाव सत है, परन्तु जिसे अनादि से श्रद्धा में नहीं लिया था, उसे श्रद्धा में लेकर नमस्कार करते हैं।

देखो, समयसार अर्थात् शुद्ध आत्मा! वह आत्मा संसार रहित है और शरीर, कर्म तो परपदार्थ हैं। ऐसे शुद्ध आत्मा को लक्ष में लेकर उसकी रुचि तथा उसे नमस्कार करना चाहिये। मैं एक आत्मा हूँ, मैं सिद्ध होने के लिये निकला हूँ, मेरे आत्मा में संसार नहीं है– ऐसा कौन कहता है? आत्मा के शुद्ध स्वभाव को जिसने दृष्टि में लिया, वह जीव कहता है कि मेरे स्वरूप में संसार नहीं है, कर्म आदि नहीं हैं; एक समय का विकार मैं नहीं हूँ। पर्याय में होने पर भी उसका पर्यायदृष्टि में अभाव करते हैं। जहाँ चैतन्य भगवान अपना मंगलाचरण करने को तत्पर हुआ, वहाँ वह कहता है कि जिस संसार का मैं, अन्त करना चाहता हूँ, वह मेरे स्वरूप में नहीं है। यदि संसार अपने स्वरूप में हो तो उसका अन्त नहीं हो सकता। संसार कहाँ है? विकारी पर्याय में संसार है, परंतु बाह्य में संसार नहीं है, और स्वभाव में भी संसार नहीं है। परवस्तु तो आत्मा के स्वभाव में नहीं है, किंतु पर का ममत्व करता है, वहीं संसार है और स्वभाव की दृष्टि में उस संसार का भी अभाव है।

मेरा संसार पर में नहीं है, और संसार मेरा स्वभाव नहीं है। मैं आनन्दकनद स्वभाव हूँ, संसार मैं नहीं हूँ। जिसे संसार दु:खदायक लगा हो और उसका अन्त करके मुक्त होने की

जिज्ञासा जागृत हुई हो, वह ऐसा विचार करता है कि अहो ! मैं शुद्ध आत्मा हूँ, क्षणिक ममत्व की वृत्ति, वह त्रैकालिक चैतन्यतत्त्व में नहीं है। त्रैकालिक शुद्धस्वभाव से च्युत होकर 'पर सो मैं'—ऐसी मान्यता, वह संसार है। जो संसार को अपना स्वरूप माने, वह उससे कैसे छूटेगा ? इसलिए प्रथम स्वभाव की दृष्टि से संसार का अभाव करते हैं। देखो, इस मंगलाचरण में मुक्ति की मिठाई बाँटी जा रही है.... पहली ही बार में ऐसा निर्णय कर कि मैं त्रिकाल चैतन्यतत्त्व हूँ; मेरी त्रैकालिक वस्तु में संसार नहीं है। पर्याय में रागादि होने पर भी वह मेरे स्वरूप की वस्तु नहीं है। अहो ! मैं अपने ज्ञानानन्द समयसार भगवान को नमन करता हूँ, शरीरादि को या विकार को नमन नहीं करता। मेरा आत्मा नोकर्म से भिन्न है, जड़कर्म से या विकार से भी रहित ऐसे अपने चैतन्य भगवान समयसार को ही मैं नमन करता हूँ—इसप्रकार धर्मात्मा की दृष्टि का विशेष झुकाव शुद्ध स्वभाव में रहता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव आये, परंतु उस समय स्वभाव की दृष्टि नहीं छूटती। आचार्य भगवान मंगलाचरण में कहते हैं कि अरे जीवो ! यदि तुम्हें संसार दुःखरूप लगता हो और उसे मिटाकर परमानंद मुक्तदशा प्राप्त करना हो तो प्रथम ऐसे स्वभाव का निर्णय करो। अनादि से बाह्य में ढल रहा था और विकार की तथा पर की विनय करके वहीं नमता था, उसके बदले अब अंतर में ढलता हूँ, कि अहो ! मैं चिदानंद आत्मा हूँ, अब मैं अपने अंतर स्वरूप में ढलकर उसी को नमन करता हूँ, अब मैं पर की विनय छोड़कर चैतन्य की विनय करता हूँ। देखो, इसप्रकार चैतन्य को जानकर उसकी महिमा और विनय करना, वह धर्म का महामंगलाचरण है।

जिसे परवस्तु में संतोष है, संसारा में सुख भासित होता है —ऐसे जीव की तो बात नहीं है। जिसे समस्त संसार दुःखरूप भासित हुआ है, उससे कहते हैं कि तू राग का सत्कार छोड़कर चैतन्य का सत्कार कर। चैतन्य की रुचि करके जो उसमें झुका, उसने मंगलाचरण किया है।

देखो, समयसार का यह अलौकिक मंगलाचरण होता है। मंगल का प्रारम्भ कहाँ से होता है ?—किसी भी परपदार्थ से मुझे लाभ होता है, ऐसी मिथ्याबुद्धि में जो पर का आदर करता है, उसे छोड़कर चिदानंदस्वभाव ही मुझे लाभदायक है—ऐसी रुचि-महिमा करके उसमें झुकना- ढलना-परिणमित होना, वह अपूर्व मंगलाचरण है। जहाँ ऐसे स्वभाव की ओर के सत्कार का भाव प्रगट हुआ, वहाँ बीच में शुभराग आने से देव-गुरु-शास्त्र की ओर के

सत्कार का भाव आये बिना नहीं रहता। स्वभाव का सम्मान छोड़कर अकेले पर के ही सम्मान में जो अटका, उसे तो वस्तु का भान नहीं है।

अहो! अनादि से मैंने अपने स्वभाव का सत्कार छोड़कर पुण्य-पाप का तथा पर का सत्कार किया, उसके बदले अब मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ही सत्कार करके उसमें नमता हूँ—उसमें ढलता हूँ। इसप्रकार जो अंतर में ढला, उसे स्वभाव से हटकर पर के सत्कार-बहुमान का भाव नहीं आता।

समयसार तो अपना शुद्ध आत्मा है। सर्वज्ञ भगवान ने एक समय के विकार से रहित जो त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव देखा है, उसका नाम 'समयसार' है। वह समयसार कैसा है ?—कि जगत में सत्‌भावरूप पदार्थ है, स्वभावभूत वस्तु है, अभावरूप नहीं है। देखो, स्वयं को ऐसे चैतन्य की ओर उन्मुख करके आचार्यदेव मंगलाचरण करते हैं।

'भाव' है अर्थात् शुद्ध आत्मा सदा 'सत्' पदार्थ है, उसमें संसार अभावरूप है। चैतन्य भगवान में पर का अभाव है। चैतन्यरूप से स्वयं भावरूप है। ऐसे भावरूप शुद्ध आत्मा का आदर करना, उसका नाम धर्म है।

प्रत्येक आत्मा ऐसे शुद्धस्वभाव से त्रिकाल है, शुद्ध सत्तारूप है, पर्याय में एकसमय का विकार है, वह स्वभाव में असत् है। ऐसे शुद्धस्वभाव को बतलाकर संत जगत से कहते हैं कि अरे जीवो! जिस पंथ पर हम जा रहे हैं, वह पंथ यही है।

श्री प्रवचनसार में आचार्यदेव कहते हैं—जो जीव दुःख से मुक्त होने का अर्थी हो, वह विशुद्ध ज्ञान-दर्शन प्रधान श्रामण्य को अंगीकृत करो... उसे अंगीकृत करने का जो **यथानुभूत मार्ग, उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं।** वैसे ही समयसार में आचार्यदेव कहते हैं कि—हे जीवो! छट्ठे-सातवें गुणस्थान में शुद्ध आत्मा के अनुभव की दशा कैसी होती है, वैसी दशा यदि तुम्हें प्रगट करना हो तो उसके प्रणेता हम यह प्रत्यक्ष हैं। हम अपने आत्मा में शुद्धात्मा के अनुभव की ऐसी दशा प्रगट करके जगत से कहते हैं कि—अहो! शुद्ध स्वभाव की दशा प्रगट करना हो तो उसका उपाय यही है। शुद्ध सत्तास्वरूप आत्मा की प्रतीति करो! उसका बहुमान करके उसमें नमन करो।

पहले से ही ऐसे स्वभाव का निर्णय करो।

बाह्य पदार्थों से तो आत्मा त्रिकाल भिन्न है और पुण्य-पापरूप जो एक समय का संसार

वह भी मेरे स्वरूप में नहीं है, मैं एक चैतन्य सत्तास्वरूप शुद्ध वस्तु हूँ—इसप्रकार शुद्ध आत्मा को प्रतीति में लेना। भीतर अंधकार दिखायी देता है, बाहर जड़ पदार्थ दिखायी देते हैं... परन्तु भाई! उन दोनों को देखनेवाला तू कौन है ? तू भीतर चैतन्य सत्तामय ज्ञाता है। अंधकार को देखनेवाला स्वयं अंधकाररूप नहीं है, अंधकार को जाननेवाला स्वयं चैतन्य प्रकाशरूप है। अहो! ऐसी शुद्ध सत्तारूप चैतन्यवस्तु की अंतर में प्रतीति करो। पर्यायबुद्धि छोड़कर शुद्ध वस्तु को प्रतीति में लो।

द्रव्य से शुद्ध सत्तारूप वस्तु है (भावाय)।
गुण से चित्स्वभाववान है (चित्स्वभावाय)।
और पर्याय से सर्वभावों का ज्ञाता है (सर्वभावान्तरच्छिदे)।

मैं त्रिकाल शुद्ध चैतन्य सत्तारूप वस्तु हूँ। मेरी पर्याय सत्तास्वभाव में से ही आती है, बाह्य से नहीं आती—ऐसा निर्णय करके स्वभाव में नमन किया, वह निर्मल पर्याय कहाँ से आयी ?—तो कहते हैं कि ज्ञानस्वभावी वस्तु में से ही परिणमित होते-होते वह दशा प्रगट हुई है। बाह्य में से या पुण्य-पाप में से प्रगट नहीं हुई है।

अफीम कड़वी और नींबू खट्टा, परंतु आत्मा कैसा ?—कि आत्मा चित्स्वभावी वस्तु है। औषधि से रोग मिटता है और पानी से प्यास मिटती है, भोजन से भूख मिटती है और वस्त्रों से ठंड दूर होती है।—इसप्रकार इन सबके गुणों का तो विश्वास करता है, परंतु आत्मा चैतन्यस्वभावी वस्तु है, वह सबका ज्ञाता है, उससे दु:ख दूर होता है और सुख की प्राप्ति होती है—ऐसा विश्वास नहीं किया है। स्वभाव सामर्थ्य का विश्वास करके उसका आदर करना, उसमें झुकना-परिणमित होना, उसका नाम मंगलाचरण है। सर्व को जानूँ, ऐसा गुण मुझमें है—इसप्रकार अपने गुण का विश्वास करे तो संसार जल्दी मिट जाये और मोक्षमार्ग प्रगट हो।

अहो! जिस कुल में तीर्थंकरों ने जन्म लिया, वही कुल इस आत्मा का है। तीर्थंकरों में और आत्मा के स्वभाव में परमार्थत: कोई अंतर नहीं है। धर्मी कहता है कि अहो! मैं अपने धर्ममूर्ति आत्मा की प्रतीति करके उसके गीत गाने को खड़ा हुआ, उसमें अब भंग नहीं पड़ेगा। अपने स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी का आदर नहीं करूँगा, ऐसी हमारे कुल की रीति है। हे तीर्थंकरों! आप जिस कुल में हुए, उसी कुल का मैं हूँ। जिस मार्ग में तीर्थंकर विचरे, उसी पंथ पर हम विचरण करनेवाले हैं। हे नाथ! तुम्हारी और मेरी एक ही चैतन्य-जाति है। मैंने भी ऐसे

शुद्ध चैतन्य को माना है और उसी का आदर करके मोक्षमार्ग में चला आ रहा हूँ। मेरे चैतन्यकुल की ऐसी रीति है। हे नाथ! परिपूर्ण चिदानंदस्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी के आश्रय से अब लाभ नहीं मानूँगा। हम आत्मा हैं, हमारा चित्स्वभाव है, गुण-गुणी पृथक् नहीं हैं; दोनों त्रिकाल हैं, उसी में से ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। ज्ञान बाहर से नहीं आता, परंतु भीतर स्वभाव भरा है, उसी में से वह प्रगट होता है।

शुद्ध आत्मा अपनी स्वानुभूति से ही प्रकाशमान है। स्वयं अंतर्मुख होकर अपना अनुभव किया, ऐसी निर्विकारी क्रिया से आत्मा प्रकाशित होता है। देखो, यह धर्म की क्रिया है। ऐसी क्रिया को जो नहीं मानता, उसे वस्तु ही सिद्ध नहीं होती। अहो! आत्मा स्वयं अपने से ही अपने को जानता है। शरीर, समवसरण और तीर्थंकरों की उपस्थिति के समय भी उन किसी के कारण से भगवान आत्मा प्रकाशमान नहीं होता; उस समय भी स्वयं अपने अंतर में स्वानुभवरूपी क्रिया से ही प्रकाशमान होता है।

देखो, आज यह समयसार का दिवस होने से समयसार का मंगलाचरण किया। अंतर में चैतन्य-स्वभावोन्मुख होकर निर्विकल्प अनुभव की जो क्रिया है, उसके द्वारा आत्मा प्रगट होता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार आत्मा प्रगट नहीं होता।

अन्तर स्वभाव की स्वानुभवरूपी क्रिया द्वारा ही आत्मा को धर्म होता है। सम्यक्श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र, यह तीनों आत्मा की स्वानुभवरूपी क्रिया से ही प्रकाशमान होते हैं। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूप स्वानुभूति की क्रिया नारकी भी कर सकते हैं। स्वर्ग के देव और तिर्यंच भी कर सकते हैं; आठ वर्ष के बालकों को भी ऐसी स्वानुभूति की क्रिया होती है। नरक में पड़े हुए, असंख्य नारकी जीव देह दृष्टि छोड़कर अंतर के चिदानंद परमात्मा को दृष्टि में लेकर ऐसी स्वानुभूति की क्रिया करते हैं। सम्यग्दृष्टि मेंढ़क भी ऐसी क्रिया करता है। मैं मेढ़क नहीं हूँ, मैं नारकी नहीं हूँ, मैं तो शुद्ध चैतन्य परमात्मा हूँ—ऐसा दृष्टि में लेकर वे जीव शुद्ध स्वभाव की अनुभूति की क्रिया करते हैं। ऐसी क्रिया वह धर्म है; वह महामंगल है।

अरे जीव! तू एक बार ऐसे सत् का यथार्थ श्रवण तो कर, श्रवण करके निर्णय तो कर कि अंतर में कैसी वस्तु है ? अंतर में शुद्ध वस्तु है, उसी के आश्रय से धर्म होता है। प्रथम ऐसी रुचि करे तो वीर्य उसका अनुसरण करके अंतरोन्मुख हो, अंतर्मुख स्वभाव से ही लाभ है—ऐसी रुचि करे तो वीर्य की गति अंतरोन्मुख हुए बिना न रहे।

चैतन्यमूर्ति आत्मा का स्वभाव कैसा है ? भले ही वर्तमान पर्याय में अल्प जानने की शक्ति हो, परंतु उसका स्वभाव सब भावों को जानने का है। ज्ञान में एकाग्रता की क्रिया करते-करते सर्वज्ञ हो, ऐसी उसकी शक्ति है। आत्मा में सर्वज्ञ होने की शक्ति को जो स्वीकार न करे, वह महान नास्तिक है। उससे कहते हैं कि—अरे आत्मा ! अन्तरस्वभाव में एकाग्रता की क्रिया द्वारा संसार को मिटाकर सर्वज्ञ होने की शक्ति तुझमें विद्यमान है। अनंत आत्माओं ने अंतर की स्वानुभूतिरूप क्रिया द्वारा सर्वज्ञ परमात्मदशा प्रगट की है। जो अंतर के चैतन्यस्वभाव में दृष्टि डालकर एकाग्र हो, वह सर्वज्ञ परमात्मा हुए बिना नहीं रहेगा। इसप्रकार इष्टदेव को तथा अपने शुद्ध आत्मा को पहिचानकर उन्हें नमस्कार किया, वह अपूर्व मंगलाचरण है।

विविध-वचनामृत

- अपना परिपूर्ण स्वभाव; स्वभाव में से पूर्णदशा प्रगट होना, वही उत्कृष्ट सुप्रभात है।
- द्रव्य में राग-द्वेष का अंश भी नहीं है, इसलिये उस द्रव्य को जाननेवाला जो ज्ञान, उसमें भी राग-द्वेष नहीं है, अर्थात् द्रव्य का ज्ञान राग-द्वेष से निवृत्त ही है। यदि ज्ञान राग-द्वेष से निवृत्त न हुआ हो तो उस ज्ञान ने राग-द्वेषरहित स्वभाव को जाना ही नहीं है। ज्ञान का परिणमन स्वभाव की ओर हुआ, वहीं स्वभाव में राग-द्वेष न होने से राग-द्वेष का अभाव हुआ है। इसप्रकार ज्ञान से ही राग-द्वेष निर्मूल होते हैं।
- यथार्थ तत्त्वज्ञान के बिना बाह्य से धर्म मानना, वह संसार का ही कारण है।
- अपने ज्ञानसामर्थ्य का विश्वास, वह धर्म है और अपने ज्ञानसामर्थ्य का अविश्वास, सो अधर्म है।

✿ आत्मा को अपने स्वभाव के अतिरिक्त अन्य कोई जगत में शरणरूप नहीं है; स्वयं ही अपने को शरणरूप है।

✿ इन्द्रियाँ तथा शरीर के बिना ही आत्मा को ज्ञान-आनंद होता है; क्योंकि जीव स्वयं ही ज्ञान और आनंदस्वरूप है।

✿ हे जीव! यदि तुझे ज्ञान प्राप्त करना हो तो प्रथम ज्ञानियों को पहिचान और अंतर से उनका पूर्ण बहुमान कर; ज्ञानी का बहुमान, वह ज्ञान का ही बहुमान है; ज्ञान प्राप्ति के लिये ज्ञानी का बहुमान अनिवार्य है।

✿ सम्यग्दर्शन के बिना किसी प्रकार का धर्म होता ही नहीं; इसलिये सम्यग्दर्शन का परम माहात्म्य जानकर जीवों को उसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये। सम्यग्दर्शन के बिना अन्य किसी प्रकार धर्म का प्रारम्भ नहीं है अर्थात् सम्यग्दर्शन ही धर्म का प्रारम्भ है और सिद्धदशा, वह धर्म की पूर्णता है।

✿ शरीर तो वेदना की ही मूर्ति है। उसे भोगने का भाव, वह दुःख ही है; वह रोग का ही घर है। आत्मा आनंद की ही मूर्ति है, उसे भोगने का भाव, वह आनंद ही है, वह सुख का ही घर है।

भगवान आत्मा

✿ आत्मा है, वह भगवान है। भले ही उसे अपने स्वरूप की खबर नहीं है, तथापि उसका भगवानपना मिट नहीं गया है। अपने को भगवान स्वरूप जाने, वह भगवान होता है।

भवभ्रमण का अन्त

✿ भाई, तुझे भवभ्रमण का अन्त करना हो तो अपूर्व सत्समागम से रुचिपूर्वक इस आत्मा के स्वभाव को समझ; बारम्बार उसी का अभ्यास और मंथन कर—ऐसा करने से अवश्य तेरे भवभ्रमण का अन्त आ जायेगा।

✿ नहिं जीवन की तृष्णा, मरणयोग नहि क्षोभ;
महापात्र वह मार्ग के, परम योगि जितलोभ।

✿ जैसी रुचि वैसा पुरुषार्थ। 'रुचि अनुयायी वीर्य'—यह चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात भी जिसने प्रीतिपूर्वक सुनी है, वह भव्य भविष्य में अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है।

आत्मा का जीवन

✿ आत्मा में 'जीवन' शक्ति है; अपने चैतन्य प्राण को धारण करके यह जीव सदा जी रहा है। जीव सदा परिपूर्ण जीवित है, वह कभी अपनी चेतना को नहीं छोड़ता, इसलिए उसका कभी मरण नहीं है। जीव किसी शरीरादि के आधार से नहीं जीता, परन्तु ज्ञान से ही जीता है। आत्मा की जीवन शक्ति को पहिचाने, उसे सच्चा आत्म-जीवन प्राप्त होता है!

प्रभुता

✿ आत्मा में अनंत महिमारूप प्रभुत्वशक्ति है। आत्मा के गुण को बिगाड़ने में कोई समर्थ नहीं है। आत्मा के ऊपर किसी की सत्ता नहीं चलती; वह स्वयं अपना प्रभु है। जो अपनी प्रभुता को स्वीकार करे, वह स्वयं अपने अनंत प्रभुत्व को प्राप्त करता है।

✿ आत्मा के परमपारिणामिकस्वभाव की महिमा करना चाहिये। उस स्वभाव में से ही समस्त निर्मल पर्यायें आती हैं। सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक की समस्त निर्मल पर्यायें प्रगट हो जाती हैं; इसलिये उसकी महिमा, उसकी रुचि तथा उसके सन्मुख होकर लीनता ही आत्मार्थी जीवों का कर्तव्य है।

✿ यह मनुष्य जन्म पाकर आत्मा को समझने का अति दुर्लभ अवसर आया है। अब सोने का समय नहीं है; इसलिये जाग और आत्मा की प्रतीति कर!

✿ इस जीव ने अनंतानंतबार मनुष्यपना प्राप्त किया और अनंत बार पंच महाव्रतों का पालन करनेवाला हुआ; ऐसा महान प्रशस्त शुभ अनंतबार इस जीव ने किया, परंतु शुद्ध स्वभावी आत्मा सर्व परवस्तुओं से निराला, कर्म संबंधरहित है; उसके ज्ञान बिना अनादि के जन्म-मरण दूर नहीं हुए; और जब तक सच्ची प्रतीति नहीं करेगा, तब तक जन्म-मरण का अंत नहीं होगा।

✿ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

✿ यदि जीव सुखी हों तो 'इन्द्रियों आदि से सुख प्राप्त करूँ'—ऐसी पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छा हो ही कैसे? इसलिये इन्द्रियविषयों की ओर जिसका झुकाव है, वह दुःखी ही है।

- ✿ जगत के जीव सुख चाहते हैं, इसलिये इतना तो निश्चित होता है कि वे वर्तमान में सुखी नहीं हैं, दुःखी हैं।
- ✿ अरे मूर्ख! क्षणिक शरीर के हेतु आत्मा को मत भूल; तेरे मन में तो इतनी उत्कंठा (भिन्नता की प्रतीति) होनी चाहिये कि शरीर तो कल छूटता था, वह भले ही आज छूट जाए! शरीर मेरा स्वरूप है ही नहीं; मैं तो अशरीरी सिद्ध स्वरूप हूँ।
- ✿ शरीर जो क्षणिक वस्तु है, नाशवान है तथा पर है, उस पर इतने व्यवसाय क्या? सहज चिदानंदस्वरूप तू है, उसमें अपने सर्व व्यवसाय को लगा।
- ✿ अहा, एक स्वभाव ही शरणभूत है.... जगत सारा अशरण है।
- ✿ परिचय के बिना ज्ञानी पुरुषों को पहिचानना कठिन है। प्रत्यक्ष परिचय के बिना ज्ञानियों के प्रति किसी प्रकार का अभिप्राय नहीं बनाना चाहिये। ज्ञानियों का परिचय (सत्समागम) और उसकी रुचि, वह तत्त्वबोध प्राप्त करने का मूल है।
- ✿ इस काल ज्ञानियों का दर्शन तथा उनकी पहिचान कठिन है; तथापि जिज्ञासुओं को उनका योग मिल ही जाता है।
- ✿ जैनधर्म कोई वेश या सम्प्रदाय नहीं है, परन्तु वीतराग का शासन है। वीतरागता ही जैनधर्म है। वीतरागमार्ग में राग का स्थान नहीं है; फिर भले ही वह राग साक्षात् भगवान के प्रति हो। जो राग है, वह जैनशासन नहीं है, वह धर्म नहीं है, वह मोक्षमार्ग नहीं है।
- ✿ आत्मा शरीर से भिन्न है; शरीर आत्मा से भिन्न है; दोनों द्रव्य पृथक् होने के कारण किसी का धर्म एक-दूसरे पर आधारित नहीं है।—ऐसा होने से शरीर में कुछ हो तो उससे आत्मा को कुछ भी लाभ या हानि नहीं होती.....
- ✿ स्वरूप का अज्ञान और उस अज्ञान के कारण पर में सुखबुद्धि—यह आत्मा की भयंकर पामरता है।
- ✿ राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करनेवाला तथा अज्ञानरूपी पट को जला देनेवाला सच्चा विजेता है।
- ✿ मेरा जीवन मेरे आधार से है, किसी के आधार से मेरा जीवन नहीं है।
- ✿ अपार सुख-समृद्धि तेरे चैतन्य में ही भरी है, उसका उपभोग कर।

✿ सम्यग्ज्ञान के बिना पर में सुखबुद्धि दूर नहीं होती और अपने सुखस्वरूप की श्रद्धा नहीं जमती।

✿ विपरीत मान्यता की पकड़ में जगत इसप्रकार आ गया है कि उस मान्यता को छोड़ना, वह मेरुपर्वत को चलायमान करने जैसा कठिन हो गया है।

✿ जिसने आत्मा को जाना, उसने सब कुछ जान लिया।

✿ व्यवहार से परमार्थ में नहीं पहुँचा जाता, परंतु वह बीच में आता है; उसका आश्रय छोड़कर ही परमार्थ में पहुँचा जा सकता है। व्यवहार परसन्मुख है, पराश्रित है, निश्चय स्वसन्मुख है—आत्माश्रित है।

✿ 'हे जीव! तू भूल मत, सुख तेरे अंतर में है, वह बाहर ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा।'

✿ जिस कार्य के लिये तेरा जन्म हुआ है, उसकी अनुपेक्षा कर, अपने स्वभाव को समझ!

✿ हे मूर्ख! क्षणिक शरीर के लिये त्रैकालिक स्वभाव को न भूल! राख के लिये रत्न को न जला।

✿ परभव में जाना, वह मरण है और स्वभाव में रहना, वह जीवन है।

✿ यह शरीर मेरा नहीं है, मैं तो शरीर से पृथक् ज्ञाता ही हूँ। मैं अमर-ध्रुव हूँ; मेरा मरण वास्तव में है ही नहीं। यह शरीर कभी मेरा था ही नहीं, तो उसे छोड़ते हुए दु:ख कैसा? मेरी गति एक ध्रुव-अचल है, उसके सिवा मेरा कुछ भी इस जगत में नहीं है। जीवन में ऐसी भावना भानेवाले को मरण का भय नहीं रहता।

✿ तू सदैव सुख चाहता है, तथापि वह क्यों नहीं मिलता? उसका विचार कर।

जिन सो ही है आतमा, अन्य जो है सो कर्म,
इसी वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।

✿ ज्ञान वही सुख है, अज्ञान वही दु:ख है।

✿ सत् समझने के लिये तुझे बदलना पड़ेगा, सत् नहीं बदल सकता।

✿ ज्ञान प्राप्ति के लिये ज्ञानी का बहुमान अनिवार्य है।

✿ शरीरादि से आत्मा को लाभ मानना, वह अनंत राग है; रोग आदि पर से आत्मा को हानि मानना, वह अनंत द्वेष है।

✿ अशुद्धभाव ही निश्चय से आत्मा को बंध है। द्रव्य बंध तो मात्र उपचार से है।

- ✿ जगत उसके अपने भाव से चला जाता है, तू अपने निजभाव में स्थिर रह।
- ✿ भूल को जानेगा तो भूल टालने का उपाय समझकर उसे दूर करेगा।
- ✿ स्वभाव की यथार्थ प्रतीति के बिना कभी धर्म का प्रारम्भ भी नहीं होता।
- ✿ जो भूल में पड़ा है और गुण को नहीं पहिचानता वह गुणीजनों में भी गुण को न देखकर मात्र भूल को ही देखता है—यह उसकी समझ का दोष है।
- ✿ शुभभाव अशुभभावों को तो दूर कर सकते हैं, परंतु जन्म-मरण को दूर नहीं कर सकते।
- ✿ सत्य की शरण का मार्ग सारी दुनिया से अलग है। सम्यग्दर्शन अर्थात् सत् का स्वीकार।
- ✿ प्रत्येक कार्य अंतरंग कारण से ही होता है, बाह्य कारण से नहीं होता। सर्व काल में, सर्व क्षेत्र में, सर्व द्रव्य में अंतरंग कारण से ही सर्व कार्य की उत्पत्ति होती है। तीन काल-तीन लोक में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है कि जिसका कार्य अन्य द्रव्य से होता हो। भूमिकानुसार निमित्त होता है किंतु सब निमित्त धर्मास्तिकावत् है, कोई किसी का कर्ता नहीं है।
- ✿ अपने ज्ञानमूर्ति आत्मस्वरूप को जानकर आत्मा से संतुष्ट होना, आत्मा से तृप्त होना और आत्मा में ही लीन होना, वह परम ध्यान है; उससे वर्तमान आनंद का अनुभव होता है और कुछ ही काल में ज्ञानानंदस्वरूप पूर्णदशा की प्राप्ति होती है।—ऐसा करनेवाला पुरुष ही उस दशा के परम सुख को जानता है; दूसरों का उसमें प्रवेश नहीं है।
- ✿ हे जीव! सुख अंतर में है, बाह्य में नहीं। सत्य कहता हूँ, भ्रमित न हो।
- ✿ 'पुनर्जन्म है, अवश्य है; इसके लिये मैं अनुभव से हाँ कहने में अचल हूँ।'
- ✿ स्वाश्रयदृष्टि, वह सिद्धदशा का कारण है और पराश्रयदृष्टि, वह संसारदशा का कारण है।
- ✿ 'आत्मा का मोक्ष करना यही कर्तव्य है।' मोक्ष ही आत्मा का पूर्ण सुख है।
- ✿ सातवें नरक का सम्यग्दृष्टि नारकी सुखी और स्वर्ग का मिथ्यादृष्टि देव दुःखी—इसमें पुण्य का क्या मूल्य!! अहो, स्वभावदर्शन! तेरी महिमा अपूर्व और अनुपम है।

अजीर्ण

- ✿ **ज्ञान का अजीर्ण**—अपने ज्ञातृत्व का गर्व और अन्य साधर्मी के प्रति तिरस्कार या उसका अनादर करना।
- ✿ **त्याग का अजीर्ण**—अपनी मानी हुई क्रियाएँ जो न करते हों परंतु ज्ञान में अच्छे हों,

तथापि उनकी निन्दा करे, और मैं उनसे कुछ अधिक हूँ—ऐसा मानना। यह दोनों महा दोष हैं और तीव्र मोहबंध के कारण हैं।

✿ जिसे अपार चैतन्यद्रव्य की प्राप्ति हुई है, वह 'महात्मा' एक समय की पर्याय से अपनी महत्ता कैसे मानेगा ? और इसलिये उसे उसका अभिमान कहाँ से होगा ? जिसने अपनी पूर्णता को नहीं देखा, वही 'पामर' तुच्छ पर्याय द्वारा अपनी महत्ता मानकर अभिमान करता है। जिसने अंश में (वह अंश भी सजातीय नहीं, किन्तु विजातीय) अहंकार किया है, उसे अंश में ही संतोष है, वह पूर्ण की प्राप्ति का प्रयत्न नहीं करेगा। अहो! अनंतवें भाग का जो अल्प ज्ञान है, उसका अहंभाव पूर्णता के साधक को कैसे होगा ?

✿ हे साधर्मी बन्धु! अपूर्व आत्मकल्याण के लिये, अनन्त काल में प्राप्त हुए इस महान सुअवसर को अंतर के उल्लासपूर्वक पकड़ लेना; अपने आत्मकल्याण के लिये इस जीवन के सुअवसर को सर्वप्रकार से सफल बनाना। एक ओर अनंतकालीन सिद्धदशा का सुख है, दूसरी ओर ? अनंतानंत जन्म-मरण का दुःख है। अपने आत्म जीवन की डोर तेरे ही हाथ में है; इसलिये सिद्धदशा की ओर प्रयाण करना।

✿ तेरा आत्मा राग द्वारा ज्ञात नहीं होता और ज्ञान द्वारा ज्ञात हुए बिना नहीं रहता, ऐसा तेरा स्वरूप है। ऐसी शक्तियाँ तुझमें विद्यमान हैं, इसलिये उनकी ओर देख!

✿ समस्त परपरिणामों से पृथक् रहकर ज्ञान जानता है।

✿ वस्तु का स्वरूप प्रतिसमय अपना कार्य कर ही रहा है, स्वरूप को स्वीकार करनेवाला भगवान होता है।

✿ जब जाण्यो निजरूप को, सब जाण्यो तब लोक।
जाण्यो नहिं निजरूप को, सब जाण्यो सो फोक॥
जिसने आत्मा को जाना, उसने सब कुछ जान लिया।

✿ हे भाई! इस अनंत दुःखमय संसार में एकमात्र सर्वज्ञदेव का धर्म ही जीव को शरणरूप है—ऐसा जानकर अंतर में सर्वज्ञ के धर्म की अत्यंत महिमा लाकर उसकी आराधना कर! सर्वज्ञ के धर्म की आराधना करने से तेरा एकांत अनाथपना दूर होकर तू सनाथ हो जायेगा—तुझे अपना सच्चा नाथ मिलेगा। उसके सिवा अन्य कोई तुझे सहारा दे, ऐसा नहीं है।

- 'सहजात्मस्वरूप चिदानंद।'
- तेरे अंतर स्वरूप में चैतन्यभाव से भरपूर आनंद सागर हिलोरें ले रहा है, उसमें डुबकी लगाकर पावन हो जा! अपने आनंदसागर को देखते ही तुझे इस संसार समुद्र की आकुलता मिट जायेगी... तू संसार समुद्र से पार हो जायेगा।

भगवान महावीर उपदेश देते हैं—

- अहो भव्य लोगों! तुम्हारा सुख अंतर में है, बाह्य में सुख नहीं है। संसार तो एकांत तथा अनंत दु:खरूप है, शोकमय है; उसमें मधुरता और मोह न करके उससे निवृत्त हो ओ! निवृत्त हो ओ! अहो लोगो! इस अपार—अनन्त संसाररूपी समुद्र का मूल अज्ञान है; सच्चे ज्ञान द्वारा उसका पार पाने के लिये पुरुषार्थ का उपयोग करो, उपयोग करो! इस अस्थिर और क्षणिक संसार में अनेक प्रकार के दु:ख ही हैं। मैं ऐसी करनी करूँ कि जिस करनी से दुर्गति की ओर न जाऊँ—ऐसा विचार तत्त्वाभिलाषी करता है। महावीर भगवान का उपदेश एक समय मात्र भी संसार का नहीं है।
- तू अपने स्वभाव को एक बार समस्त विश्‍व से भिन्नरूप देख, तो पुन: कभी तुझे स्वरूप में भ्रान्ति नहीं होगी और विश्‍व में कहीं ममत्व नहीं होगा; आत्मास्वरूप की महत्ता कभी छूटेगी नहीं और पर की ममता कभी होगी नहीं। इसलिये एक बार अवश्य ऐसा कर।
- आत्मस्वरूप से विशेष महिमावान कोई भी वस्तु इस जगत में नहीं है। आत्मस्वरूप से महान ऐसा कुछ भी नहीं है। ऐसा कोई प्रभाव योग इस सृष्टि में उत्पन्न नहीं हुआ है, है नहीं और होगा नहीं कि जो प्रभाव योग पूर्ण आत्मस्वरूप में भी प्राप्त न हो।
- 'जो स्वरूप है, वह अन्यथा नहीं होता,' यही अद्‌भुत आश्‍चर्य है, अव्याबाध स्थिरता है।
- सम्यक्त्वसहित नरक निवास भी अच्छा है, परंतु सम्यक्त्वरहित देवलोक में वास भी शोभा प्राप्त नहीं करता।
- अपार ऐसे संसार समुद्र से रत्नत्रयरूप नौका को पार करने के लिये सम्यग्दर्शन चतुर नाविक है।
- जिस जीव को सम्यग्दर्शन है, वह अनंत सुख प्राप्त करता है और जिस जीव को

सम्यग्दर्शन नहीं है, वह पुण्य करे, तथापि अनंत दु:ख भोगता है।

- ✿ हे जीव! तुझे पुण्य के फल को ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ेगा, परंतु पुण्य तुझे फल देने के लिये ढूँढ़ता आयेगा; इसलिये पुण्य की या पुण्य के फल की इच्छा छोड़ दे।
- ✿ शरीर के वियोग-काल में निश्चिंत रहना; आत्मा शाश्वत है।
- ✿ करनेयोग्य कार्य कर लो; समय अमूल्य है, यह याद रखो.... अयोग्य रीति से किसी शक्ति का उपयोग न करो, तथा एक पल भी व्यर्थ न जाये, इसकी सावधानी रखो।
- ✿ स्वरूप का ज्ञान मानव जीवन का कर्तव्य है और वह ज्ञान प्राप्त कर लेने में उसकी सफलता है।

वैराग्य-अमृत

इस जीव को अनंत काल में संयोग-वियोग के अनेक प्रसंग बने हैं। अनेक जीवों के साथ संबंध बाँधकर और सबको छोड़कर स्वयं आया है; बहुत से जीवों ने अपने को छोड़ा है। इसप्रकार अनंत काल में बहुतों को स्वयं ने छोड़ा और दूसरे जीवों ने अपने को छोड़ा है। मात्र इस जन्म के राग को लेकर ही जीव को दु:ख होता है, वास्तव में संसार में कोई किसी का नहीं है। इस संसार में सारभूत तो ज्ञायक आत्मा और पंचपरमेष्ठी भगवान हैं, सच्ची शरण आत्मा की और पंचपरमेष्ठी भगवान की है।

मोक्ष का एक ही उपाय

[भगवती प्रज्ञा ही मोक्ष का साधन है, आत्मा से भिन्न साधन का अभाव है]

मोक्ष अधिकार में मोक्ष का उपाय दर्शाते हुए आचार्य प्रभु कहते हैं कि आत्मा के स्वभाव को और बन्ध भाव को—दोनों को उनके लक्षणों द्वारा भिन्न-भिन्न पहिचानकर उन्हें पृथक् करना ही एक नियम से मोक्ष का उपाय है और उसका साधन आत्मा से अभिन्न ऐसी भगवती प्रज्ञा ही है। आत्मा के मोक्ष का साधन आत्मा से भिन्न नहीं है। जिसप्रकार मोक्ष आत्मा से भिन्न नहीं है, उसीप्रकार उसका साधन भी आत्मा से भिन्न नहीं है। भाई! तेरे मोक्ष का साधन अंतर में तेरे आत्मा के ही आश्रित है... इसलिये आत्मा की ओर उन्मुख होकर स्वाश्रय का सेवन कर!]

प्रश्नः—मोक्ष का कारण क्या है?

उत्तरः—आत्मा और बंध को पृथक् करना, वह एक ही मोक्ष का कारण है। इसके सिवा बंधन के प्रकार आदि को जानता रहे अथवा उनका चिंतन करता रहे कि—'मुझे बंधन से छूटना है-छूटना है' तो उससे कहीं बंधन से छुटकारा नहीं होता। बंधन से छुटकारा तो इस एक ही उपाय से होता है कि आत्मा का स्वभाव और बंधभाव—इन दोनों को पृथक् करे।

प्रश्नः—यह एक ही मोक्ष का कारण क्यों है?—इसप्रकार मोक्ष का जिज्ञासु होकर उसका स्वभाव समझने के लिये जो जीव प्रश्न पूछता है, उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि—

रे जानकर बंधनस्वभाव, स्वभाव जान जु आत्म का।
जो बंध में हि विरक्त होवें, कर्म मोक्ष करें अहा॥

अबंधस्वभावी, चैतन्यस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा तथा दूसरी ओर विकाररूप ऐसे बंधभाव—इन दोनों का स्वभाव अत्यंत भिन्न है। ऐसी भिन्नता को जो जानता है, वह निज स्वभाव की ओर उन्मुख होता हुआ बंधों से विरक्त होता है—अर्थात् वह कर्मों से मुक्त होता है। इसके सिवा अन्य रीति से मुक्ति नहीं होती—यह एक ही मोक्ष का उपाय होने का नियम है।

आत्मा तो निर्विकार चैतन्य चमत्कार से भरपूर है। चौंसठ ऋद्धियों में केवलज्ञानादि ऋद्धि आती है, वह आत्मा की सच्ची ऋद्धि है। स्वरूप की साधना करते हुए मुनियों को बाह्य में भी रसऋद्धि आदि अनेक ऋद्धि-लब्धियाँ प्रगट होती हैं, परंतु चैतन्य चमत्कार के समक्ष जगत के किसी चमत्कार की या ऋद्धि की महत्ता उनको नहीं है। जिसमें निर्दोषता और वीतरागता

भरी है—ऐसा आत्मा, बंध भावों से अत्यंत भिन्न है। रागादि दोष, वह तो बंध का स्वभाव है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव तो चैतन्यस्वभाव से ही सर्वत्र परिपूर्ण है।

अरे जीव! एक बार ज्ञान को अंतर की गहराई में उतारकर ऐसे विभाग तो कर। तेरे चैतन्य चमत्कार में विकार का प्रवेश नहीं है, परंतु अनंत गुण तथा केवलज्ञानादि अनंत ऋद्धियाँ तेरे चैतन्य चमत्कार में समा जाती है। जगत को बाह्य चमत्कारों की महिमा आती है कि—सोमासती के शील के प्रताप से सर्प का हार बन गया, भगवान की स्तुति करने से कारागृह के ताले टूट गये—इत्यादि; परंतु चैतन्य के गुप्त चमत्कार में अपार स्वभाव सामर्थ्य भरा है—ऐसे अपने चमत्कार की महिमा अपने को नहीं आती। स्वभाव क्या वस्तु है और परभावरूप बंधभाव किस प्रकार भिन्न है, उसे जान ले तो बंधन से विमुख होकर स्वभावोन्मुख हो और मोक्ष का उपाय प्रगट करे।

स्वभाव और बंधभाव को भिन्न जानकर स्वभावोन्मुख हो तो बंधन से छूट जाये; परंतु यदि स्वभावोन्मुख न हो और बंध के विचार में ही रुका रहे तो बंधन से नहीं छूटेगा। जो जीव बंध भाव को और आत्मस्वभाव को सचमुच भिन्न जान ले, वह जीव बंध से विमुख होकर स्वभावोन्मुख हुए बिना नहीं रहता। यदि ऐसा न हो तो उसने वास्तव में दोनों को भिन्न जाना ही नहीं है—भेदज्ञान किया ही नहीं है।

देखो, यह निश्चय मोक्षमार्ग की बात है, नियम से मोक्ष का उपाय क्या है, उसकी यह बात है। आत्मस्वभाव को बंधन से भिन्न जानना, भिन्न श्रद्धा करना और भिन्न परिणमित होना—ऐसा जो द्विधाकरण, वह एक ही नियम से मोक्षकारण है, अन्य कोई मोक्षकारण नहीं है।

अब मुमुक्षु शिष्य पूछता है कि—अहो! आपने द्विधाकरण को ही मोक्ष का साधन कहा, तो उस द्विधाकरण का साधन क्या? किस साधन द्वारा आत्मा और बंध को पृथक् किया जाये? ऐसा पूछनेवाले शिष्य को आचार्यदेव साधन बतलाते हुए कहते हैं कि—आत्मा और बंध को भिन्न करने में भगवती प्रज्ञा ही साधन है; क्योंकि अन्य किसी भिन्न साधन का अभाव है:—

छेदन करो जिवबंध का तुम नियत निजनिज चिह्न से।
प्रज्ञा-छैनी से छेदते दोनों पृथक् हो जाय है॥२९४॥

देखो, यह मोक्ष के उपाय की रीति। मोक्ष का साधन आत्मा से बाहर नहीं है। जो जीव

मुमुक्षु होकर, शोधक होकर आत्मा के मोक्ष का साधन ढूँढ़ता है, उसकी गंभीर विचारणा करता है, उसे आत्मा के मोक्ष का साधन कहीं बाहर दिखायी नहीं देता, परंतु आत्मा में ही मोक्ष का साधन है और वह साधन 'प्रज्ञा' है। प्रज्ञा अर्थात् आत्मा और बंध दोनों के स्वलक्षणों को भिन्न-भिन्न जाननेवाला ज्ञान। दोनों को भिन्न जानकर वह ज्ञान आत्मस्वभाव में तो तन्मय होकर और रागादि बंधनभावों से पृथक् होकर परिणमित होता है। ऐसी ज्ञान परिणतिरूप से भगवती प्रज्ञा, वही मोक्ष का साधन है।

देखो, यह मोक्ष के साधन की मीमांसा! मीमांसा अर्थात् गहरी जाँच, गंभीर विचारणा। जो राग को या बाह्य क्रिया को मोक्ष का साधन मानते हैं, वे तो गंभीर विचारणा से रहित हैं। अरे भाई! तू जरा विचार तो कर कि आत्मा की शुद्धि का साधन अशुद्धता कैसे होगा? आत्मा की शुद्धि का साधन आत्मा से बाहर कैसे होगा? राग तो उदयभाव है और मोक्ष तो क्षायिकभाव है; फिर उदयभाव क्षायिकभाव का साधन कैसे होगा? जो मुमुक्षु होकर मोक्ष के साधन को ढूँढ़ते हैं—विचारते हैं, उन्हें तो राग में मोक्ष का साधन भासित नहीं होता; परंतु राग को आत्मा से भिन्न करनेवाली जो प्रज्ञाभगवती प्रज्ञा—वही मोक्ष का साधन अंतरंग में प्रतिभासित होता है।

व्यवहारकथन आये वहाँ भी मुमुक्षु उलझन में नहीं पड़ता कि—यह भी मोक्ष का साधन होगा? वह जानता है कि निश्चय से मोक्ष का साधन वही होता है कि जो मेरे स्वभाव से अभिन्न हो, क्योंकि निश्चय से भिन्न साधन का अभाव है। जिसप्रकार मोक्ष का कर्ता आत्मा से भिन्न अन्य कोई नहीं है, उसीप्रकार उस मोक्ष का कारण (साधन) भी वास्तव में आत्मा से भिन्न नहीं है। प्रज्ञा अर्थात् राग से पृथक् होकर अंतरोन्मुख ज्ञान कि जो आत्मा से अभिन्न है, वही मोक्ष का सच्चा साधन है। इस साधन द्वारा ही आत्मा बंधन को छेद सकता है। इसके सिवा जो भेदरूप व्यवहार साधन, उसके द्वारा सचमुच बंधन का छेदन नहीं होता। उस व्यवहार के साधन में अटकने से तो राग की उत्पत्ति और बंधन होता है। जिसके आश्रय से बंधन हो, वह स्वयं मोक्ष का साधन कैसे हो सकेगा?—नहीं हो सकता। बंध को आत्मा से पृथक् करनेवाला ज्ञान ही मोक्ष का कारण होता है। व्यवहार के आश्रय से जो मोक्ष का साधन मानते हैं, उन्होंने मोक्ष के साधन की सच्ची मीमांसा नहीं की है; गंभीर विचारणा नहीं की है, छिछला—ऊपरी विचार किया है; वे शास्त्र के मर्म तक नहीं पहुँचे हैं। भाई, संतों का हार्द और शास्त्रों का मर्म तो यह है कि—आत्मा के मोक्ष का साधन आत्मा के ही आश्रित होता है, दूसरे के आश्रित नहीं होता।

जो राग को मोक्ष का साधन मानता है, वह राग में ही मोक्ष का साधन ढूँढ़ता है; परंतु राग तो बंध का साधन है, उसमें मोक्ष का साधन कहाँ से मिलेगा? राग को मोक्ष का साधन माननेवाला सचमुच उस राग को आत्मस्वभाव से अभिन्न मानता है; तो जिसे अपने से अभिन्न माने, उससे स्वयं पृथक् कैसे होगा? और राग से जो पृथक् न हो, वह मोक्ष कहाँ से प्राप्त करेगा? इसलिये हे भाई! तू गंभीर विचारणा करके सच्चे साधन की खोज कर। पहली बात तो यह है कि—कर्ता का साधन निश्चय से कर्ता से भिन्न नहीं होता। मोक्ष का कर्ता तू है—तो तुझसे भिन्न साधन नहीं हो सकता... वह साधन कौन सा है?—रागादि बंधभावों का सर्व ओर से छेदन करनेवाली और समस्त चैतन्य भावों को अंगीकार करनेवाली ऐसी जो वीतरागी ज्ञान परिणति, भगवती प्रज्ञा, वह बंध को छेदने में तेरा साधन है। उस साधन द्वारा ही आत्मा बंधन को छेदने की क्रिया करता है।

— शरीर में साधन को ढूँढ़ना नहीं।

— राग में साधन को ढूँढ़ना नहीं।

— राग में एकमेक जो ज्ञान, उसमें भी साधन को ढूँढ़ना नहीं।

— शरीर से पार, राग से पार, ऐसे चैतन्य भाव में ही अपने साधन को ढूँढ़ना।

— शरीर तो चेतना रहित है, उसमें मोक्ष साधन नहीं है।

— राग भी चेतक स्वभाव से विरुद्ध भाव है; उसमें भी मोक्ष का साधन नहीं है।

— उपयोग स्वरूप आत्मा को समस्त रागादिभावों से भिन्न जाननेवाली जो प्रज्ञा, वह आत्मस्वभाव से अभिन्न वर्तती हुई, आत्मा के मोक्ष का साधन होती है; इसलिये ऐसी प्रज्ञाछैनी को अंतर में एकाग्र होकर इसप्रकार पटकना चाहिये कि बंधभाव आत्मा से अत्यंत भिन्न हो जायें। इस 'प्रज्ञा' को भगवती कहकर आचार्यदेव उसकी महिमा प्रगट की है।

इस भगवती प्रज्ञा द्वारा आत्मा और बंध अवश्य पृथक् हो जाते हैं। अंतर में ऐसा साधन करे और कार्यसिद्धि न हो, ऐसा नहीं हो सकता। कोई कहे कि हमने बहुत काल तक अभ्यास किया परंतु कोई कार्यसिद्धि तो हुई नहीं? तो—आचार्यदेव कहते हैं कि—भाई! सच्चे साधन को (भगवती प्रज्ञारूप साधन को) तूने नहीं जाना और अन्य साधन माना है; क्योंकि वह भगवती प्रज्ञा तो ऐसा अमोघ साधन है कि उसके द्वारा बंध और आत्मा की भिन्नता अवश्य होती ही है।

समाचार-संग्रह

परमोपकारी श्री कानजी स्वामी का विहार

राजकोट—तारीख २४-४-६६ को स्वामीजी का भव्य स्वागत हुआ, यहाँ १५ तक समयसार जी शास्त्र तथा श्री पंडित राजमलजी कृत समयसार कलश टीका पर दिन में दो घंटा प्रवचन तथा रात्रि को एक घंटा शंका समाधान का कार्यक्रम था।

वैशाख सुदी ११ श्री समवसरणजी तथा मानस्तंभ (धर्म वैभवस्तंभ) में भगवान की स्थापना की वर्षगाँठ का बड़ा उत्सव मनाया गया, जिनेन्द्र रथयात्रा भी बड़े ठाठबाट से निकाली थी, पश्चात् जिन मंदिर के मैदान में जिनाभिषेक सहित समूह पूजा भक्ति हुई। बाहर गाँव से बड़ी संख्या में मेहमान आये थे, वहाँ दो मंजिला सुंदर जिन मंदिर, स्वाध्यायमंदिर, समवसरण जिनालय, मानस्तंभजी जो आधुनिक खास सामग्री से सुंदरतम ढंग से बना है-दर्शनीय है। विशेषता यह है कि यहाँ विशेष धर्म वात्सल्य तथा उच्च शिक्षा प्राप्त धर्म जिज्ञासु और तत्त्व को समझनेवाले जैन भाईयों की भी बड़ी संख्या तथा जैनेत्तर भाई भी जैनधर्म में समझपूर्वक श्रद्धावान होते रहते हैं। इसलिये पूज्य स्वामीजी हर साल यहाँ पधारकर पवित्र अध्यात्मज्ञान की सुमधुर वर्षा करते हैं। विशाल सभा मंडप में ठीक समय पर हजारों श्रोता बड़ी रुचि सहित श्रवण करते हैं, स्वामीजी गूढ़ गहनतम तत्त्वज्ञान को सादी रोचक भाषा में समझाने की प्रशस्त पद्धति द्वारा मानों साक्षात् श्रोताओं के कानों में सुरुचिमय अमृत ही परोस रहे हैं, जो प्रत्यक्ष अनुभव करने पर ही ख्याल में आ सकते हैं। यहाँ जैन यात्रियों के लिये धर्मशाला तैयार हो रही है। यहाँ बारहों मास नियमित-शास्त्रसभा, तत्त्वचर्चा, पूजा-भक्ति का कार्यक्रम है, उसमें मनोज्ञ वक्ता श्री लालचंदभाई का नेतृत्व होने से जैनधर्म की उत्तम प्रभावना हो रही है।

स्वामीजी राजकोट से विहार कर तारीख ९-५-६६ सोनगढ़ पधारेंगे, सोनगढ़ में तारीख १५-५-६६ से तारीख ३-३-६६ तक २० दिन के लिये जैन शिक्षण वर्ग चलेगा।

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

महावीर जयंती मनाने में विशेषता

बड़ी सादड़ी—(राज०) बुलंदशहर (उ०प्र०), छत्तरपुर (म०प्र०) से बड़े भारी

उत्साह भरा पत्र है कि महावीर जयंती विशेष उत्तम ढंग से मनाई गई। पत्र विस्तार से है जिसमें जैनधर्म के परिचय तत्त्वज्ञानपूर्वक उत्साहमय कार्यक्रम है।

विशेष-बात

बड़ी सादड़ी—राजस्थान में बड़ी संख्या में बालिकायें तथा बालकों सहित छोटे बड़े सबने जो श्वेताम्बर थे, परम पावन जैनधर्म में समझपूर्वक अभ्यास; तत्त्वज्ञान प्राप्ति हेतु पाठशाला शुरु की है—सुखी बनने के लिये सर्वज्ञ वीतराग ने कैसा ज्ञान और उपाय बताया है, उस पर सुंदर ढंग से उस दिन सब समाज के बीच पाठशाला में—अत्यंत सावधानी से पढ़नेवालों ने सबने-अपूर्व विवेचन किया, धन्य है धर्म प्रेमी बालकों को तथा उत्तम शैली से पढ़ानेवाले धर्मातमा श्री सुजानमलजी मोदी को।

सुवर्णपुरी समाचार-जन्म जयन्ती महोत्सव

सोनगढ़—वैशाख सुदी २ परमोपकारी पूज्य श्री कानजी स्वामी का ७७ वाँ जन्म जयन्ती महोत्सव विशेष प्रभावना सहित मनाया गया। ८ दिन पूर्व बड़े ठाठबाट सहित बृ०सिद्ध चक्र विधान पूजा, पश्चात् सु० १-२-३ उत्सव मनाया गया। स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर आदि उत्तम प्रकार से सजाया गया। सागर, इंदौर, बंबई आदि बाहर गाँव से मेहमान बहुत संख्या में आये, शास्त्रजी की बड़े ठाठबाट से रथयात्रा निकाली गई, अजमेर भजन मंडली द्वारा सुंदर कार्यक्रम रहा, देश देशांतर से हजारों की संख्या में पूज्य स्वामीजी के प्रति भक्ति भरे उद्गारमय शुभ कामनायें तथा श्रद्धांजलिमय संदेश आये, गरीबों को अनाज पहुँचाने के लिये भी कुछ हुआ। इसप्रकार यह उत्सव बड़ी उत्तमता और अपूर्व उल्लाससहित सम्पन्न हुआ। सब भक्तों को धन्यवाद।

जैन शिक्षण शिविर

सोनगढ़—तारीख १५-५-६६ से तारीख ३-६-६६, बीस दिन तक जैन दर्शन शिक्षण शिविर चलेगा। धर्म जिज्ञासुओं को पवित्र तत्त्वज्ञान का लाभ लेने हेतु पधारने का आमंत्रण है। आने के पूर्व सूचना दीजियेगा—यह शिविर मात्र पुरुषों के लिये है।

पता:—दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म के ग्राहकों से प्रार्थना

आत्मधर्म का वार्षिक चन्दा जिनने न भेजा हो, वे तारीख २२-५-६६ तक भेज देवें। बाद में न भेजें कारण कि बाद में हम वी.पी. करना शुरु करेंगे। उस समय मनिऑर्डर आने से गड़बड़ी होना संभव है।

—प्रकाशक

शुभ संदेश

परमोपकारी पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी की ७७ वीं जयंती मनाने के अवसर पर सैकड़ों शुभ संदेश आये, उनमें से कई पत्र व तार बड़े लम्बे-वर्णनात्मक थे, उनमें से तीन पत्रों में से कुछ अंश यहाँ दे रहे हैं:—

(१) **दिगम्बर जैन मुमुक्षुमंडल सहारनपुर**—तारीख २३-४-६६ बाबू श्री अनंतरायजी एडवोकेट के सभापतित्व में श्री कानजी स्वामी का ७७ वाँ जन्मजयन्ती महोत्सव तारीख २२ को महान उत्साह से मनाया गया। प्रथम सामूहिक मंगलमय मंगलाचरण के पश्चात् श्री जिनेश्वरप्रसादजी ने उक्त महान आत्मा के महान उपकारों का वर्णन किया, उनके द्वारा किये गये प्रशस्त, समीचीन कार्यों का परिचय कराकर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। पश्चात् सभापति श्री ने स्वामीजी का परम उपकार मानते हुए बताया कि कुछ समय से जैनधर्म का वास्तविक सार प्राय: लुप्त सा हो गया था, हम मात्र पुण्य क्रियाओं को ही मोक्ष का उपाय मानकर संतोष कर रहे थे। ऐसे समय में स्वामीजी के मार्मिक आत्म संदेश ने हमारी अंतर्दृष्टि खोल दी। पूर्वाचार्यों के मंतव्य का सरस, सरल, सहृदय-संवेद्य रीति से स्वामीजी प्रचार कर रहे हैं, ऐसे महान उपकारी सत्पुरुष को मैं सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। बाद अन्य विशेष व्यक्तियों के विवेचन हुए।

प्रेषक - देवचंद्र जैन साहित्याचार्य।
कलकत्ता दिगम्बर जैन मुमुमु मंडल,
दिगम्बर जैन चैत्यालय व्य० समिति इंदौर, दिल्ली।

(३) भोपाल में इस जयंती के उपलक्ष में एक आम सभा में सर्वप्रथम ब्रह्मचारी राजारामजी ने स्वामीजी के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि प्रगट की, पश्चात् आपने कहा गुजरात-सौराष्ट्र में अनेक अन्य मतावलम्बियों का दिगंबर जैन धर्म को स्वीकार करना यह दिगंबर

समाज की महान उपलब्धि है, जिसका श्रेय पूज्य स्वामीजी को ही है। वास्तव में हमारे ऊपर पूज्य स्वामीजी के अनेकों महान उपकार हैं, जो हम कभी भुला नहीं सकेंगे। श्री सूरजमलजी सा. ने स्वामीजी के प्रशस्त जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला, कहा कि—आज स्वामीजी की ही कृपा का प्रसाद है कि—हमें जिनवाणी के महान गंभीर सत्य सिद्धांतों का अत्यंत सरल एवं प्रभावशाली रूप में परिज्ञान हो रहा है।

हम जैसे अनेकों आत्मार्थी बन्धु, देश के विभिन्न भागों में स्वाध्याय मंडल एवं मुमुक्षु मंडलों के माध्यम से निरंतर जिनवाणी के स्वाध्याय द्वारा आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हो रहे हैं। स्वामीजी की आलोचना के बहाने आज कुछ विद्वानों द्वारा जिनवाणी के मौलिक तत्त्वों का जो असद्‌विवेचन किया जा रहा है, वह हमारे लिये सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से विशेष चिंतनीय है। श्री डालचंदजी ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि—वस्तुतः स्वामीजी की दिव्यप्रेरणा शक्ति के फलस्वरूप आज हमारे जीवन में विशेष क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। समाज में धार्मिक चेतना आज दृष्टिगोचर होती है, वह पूज्यश्री के ही पुण्य प्रताप का फल है। पश्चात् श्री गुलाबचंदजी पांडया ने बड़ी उत्तम बातें भी बताईं। —रतनलाल सौगानी

(३) इन्दौर—अनेक मंदिरजी में विविध कार्यक्रम के पश्चात् २ से ४ तक मारवाड़ी मंदिरजी में तत्त्वचर्चा, तथा रात्रि को आम सभा श्री बाबुलाल पाटोदी की अध्यक्षता में रामाशाह मंदिर में रखी गई। मंदिर भर गया, श्री फूलचंदजी जज सा० ने सोनगढ़ तथा पूज्य स्वामीजी का संपूर्ण परिचय दिया, वकील श्री कोमलचंदजी सा० के पश्चात् विशेष माननीय श्री पंडित बंशीधरजी सा० ने कहा कि पूज्य कानजीस्वामी के द्वारा हिंदुस्तान, गुजरात नहीं, बल्कि बाहर भी धार्मिक उत्तम प्रभावना हुई है, हो रही है। तथा इनके प्रवचन तथा साहित्य जो सोनगढ़ से प्रकाशित हुये हैं, वह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य आदि के अनुरूप तथा अनंत ज्ञानियों के अनुकूल ही हैं, कोई फर्क नहीं है। हमने ऐसे संत पुरुषें की ७७ वीं जन्म जयंती मनाते हुए यह भावना भाई कि हम भी स्वामीजी के द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलें। श्री बाबूलाल पटोदी ने कहा कि मैं सोनगढ़ गया था, वहाँ पर पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन सुना, स्वाध्याय भवन, जिन मंदिर, प्रवचन मंडप देखा, चौथे काल सरीखा लगता है। जो भाई उनकी सिर्फ टीका ही करते हैं, वह बिल्कुल भ्रम है। बाद अनेक सज्जनों के द्वारा विवेचन हुए।

पूनमचंद छाबड़ा, तारीख २५-४-६६

महत्त्वपूर्ण जैनदर्शन शिक्षणवर्ग

गुना (म०प्र०)—अत्यंत हर्ष का विषय है कि—गुना (म०प्र०) में ७ जून से २१ जून ६६ तक धार्मिक शिक्षण वर्ग का बड़ा आयोजन श्री मध्य प्र० दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के अंतर्गत किया जा रहा है। इस शिक्षणवर्ग में आदरणीय सर्वश्रेष्ठ वक्ता श्री खेमचंदभाई सोनगढ़, श्री बाबूभाई फतेपुर, श्री पंडित फूलचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री वाराणसी, श्री पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी, तथा व्यक्ति विशेष–श्री युगलकिशोरजी एम.ए. साहित्यरत्न कोटा, श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री बूंदी, श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री अशोकनगर, श्री पंडित धन्नालालजी लश्कर, व श्री नेमीचंदभाई रखियाल, आदि विशेष मर्मज्ञ विद्वान अध्यापक के रूप में पधार रहे हैं, इन शिक्षण कक्षाओं में उक्त महान विद्वानों द्वारा परम पूज्य श्री जिनवाणी के मूलभूत तत्त्वों और सिद्धांतों का यथार्थ भाव हृदयंगम कराया जायेगा, साथ ही प्रातः एवं रात्रि को आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होगा। इस वर्ग में प्रौढ़ पुरुष तथा १४ वर्ष से अधिक आयु के विद्यार्थी भाग ले सकेंगे। भोजन, आवास आदि की निःशुल्क व्यवस्था की गई है। इसमें तीन वर्ग होंगे। जिनमें द्रव्यसंग्रह, मोक्षमार्ग प्रकाशक, छहढाला, जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग १–२–३ व जैन सिद्धांत प्रवेशिका आदि ग्रंथ पढ़ाये जावेंगे। अतएव समस्त धर्मप्रेमी समाज से निवेदन है कि इस महत्वपूर्ण अवसर से अवश्य लाभ उठावें तथा इसमें भाग लेनेवाले जिज्ञासु भाई आने की सूचना १० दिन पूर्व तक भिजवा देवें, ताकि उचित व्यवस्था की जा सके। अपने आने की सूचना निम्न पते पर शीघ्र भेजें। डालचंद सर्राफ, सर्राफा बाजार, चौक, भोपाल (म.प्र.)

भवदीय–
डालचंद सर्राफ (मंत्री)

नया प्रकाशन

श्रीमत्भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

श्री नियमसारजी शास्त्र (दूसरी आवृत्ति)

सर्वज्ञ वीतराग कथित महान आध्यात्मिक भागवत् शास्त्र, ११ वीं शती के अध्यात्मरस के सर्वोत्तम कवि शिरोमणि श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिवरकृत संस्कृत टीका तथा अक्षरशः प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद सहित शास्त्र जिसकी तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा काफी जोरों से मांग है, पूर्णरूप से संशोधित, यह ग्रंथ महान, अनुपम, पवित्र तत्त्वज्ञान की अपूर्व निधि समान है। पृष्ठ संख्या ४१५, बड़ी साइज में, रेगजीन कपड़े की सुन्दरतम जिल्द, मूल्य बहुत कम कर दिया है। मात्र ४- पोस्टेजादि अलग। देश-विदेश में, कोलेज-विश्वविद्यालयों में-सर्वत्र सुंदर प्रचार के योग्य अत्यंत सुगम और सब प्रकार से सुंदर ग्रंथ है। जिज्ञासुगण शीघ्र ओर्डर भेजें।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

खास निवेदन

आत्मधर्म मासिक पत्र द्वारा २१ साल से सर्वज्ञ वीतराग कथित पवित्र तत्त्वज्ञान का प्रचार हो रहा है। २१ वें वर्ष का चंदा चैत्र मास में समाप्त हो जाता है। खुशी समाचार यह है कि—हमारी संस्था के भूतपूर्व प्रमुख श्री रामजीभाई स्मारक की ओर से इस एक वर्ष के लिये आत्मधर्म का चंदा घटाकर 'दो रुपया' रखा है। मुमुक्षु मंडलों को प्रार्थना है कि ज्यादा से ज्यादा संख्या में आत्मधर्म के नये ग्राहक बनाकर और चालू ग्राहकों से मिलकर आत्मधर्म का चंदा एकत्र करके मनिआर्डर या चैक से भेजने का कष्ट कीजियेगा, ताकि आगामी ग्राहक संख्या का अंदाजा हम लगा सकें। ग्राहक के नाम पूर्ण पते के साथ रेलवे स्टेशन, पोस्ट का जिले का साफ नाम, नये ग्राहक या पुराने ग्राहक ऐसा अवश्य लिखें, प्रथम से ही जिन्होंने चंदा जमा कराया है, भेज दिया है, वह भी हमको पत्र द्वारा सूचित करें, आपका ग्राहक नं० भी अवश्य लिखें। वैशाख मास से ही आत्मधर्म बड़ी साइज में, चित्र, कथा, विशेष लेख सहित प्रकाशित हो रहा है। वी०पी० करने में बड़ी कठिनाई रहती है, आशा है कि शीघ्र उपरोक्त सहयोग देंगे।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट (आत्मधर्म विभाग)
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५–०
प्रवचनसार	४–०
नियमसार	४–०
पंचास्तिकाय	४–५०
आत्मप्रसिद्धि	४–०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०)	५–०
स्वयंभू स्तोत्र	०–६०
मुक्ति का मार्ग	०–६०
समयसार प्रवचन भाग १	नहीं है
समयसार प्रवचन भाग २	नहीं है
समयसार प्रवचन भाग ३	नहीं है
समयसार प्रवचन भाग ४	४–०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१–०
” ” द्वितीय भाग	२–०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०–६०
भाग–२ ०–६० भाग–३	०–६०
योगसार–निमित्त उपादान दोहा	०–१२
श्री अनुभवप्रकाश	०–३५
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१–०
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन बृ० पूजा	०–७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६–०
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१–५०
जैन बाल पोथी	०–२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०–१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०–८७
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२–५०
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१–८५
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१–४५
अपूर्व अवसर प्रवचन और	
श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०–८५
भेदविज्ञानसार	२–०
अध्यात्मपाठ	३–०
भक्ति पाठ संग्रह	१–०
वैराग्य पाठ संग्रह	१–०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०–१५
स्तोत्रत्रयी	०–५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०–२५
‘आत्मधर्म मासिक’ वार्षिक चंदा	३–०
” फाईलें सजिल्द	३–७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०–१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१–०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में	१८)
ग्रन्थ का मात्र	६–०

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।